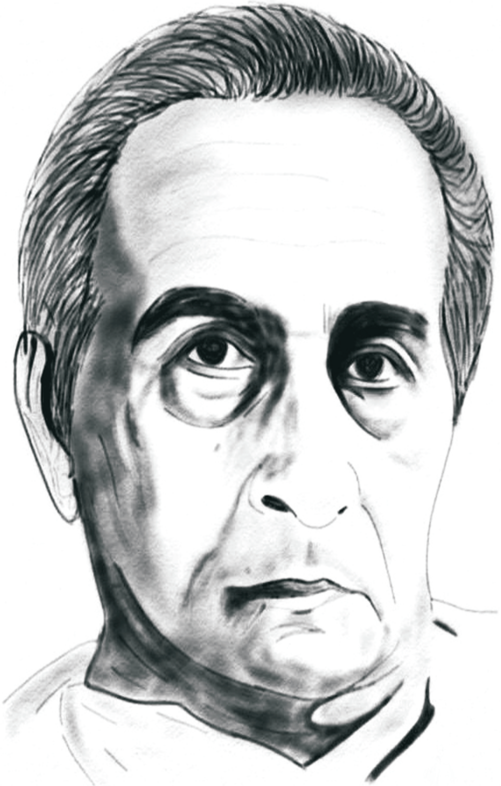

'जरूरी नहीं कि व्यंग्य में हँसी आए। यदि व्यंग्य चेतना को झकझोर देता है, विद्रूप को सामने खड़ा कर देता है, आत्म साक्षात्कार कराता है, सोचने को बाध्य करता है, व्यवस्था की सड़ांध को इंगित करता है और परिवर्तन के लिए प्रेरित करता है तो वह सफल व्यंग्य है।'

हरिशंकर परसाई

किताबगंज प्रकाशन

सर क्यों दाँत फाड़ रहा है

(हास्य-व्यंग्य संकलन)

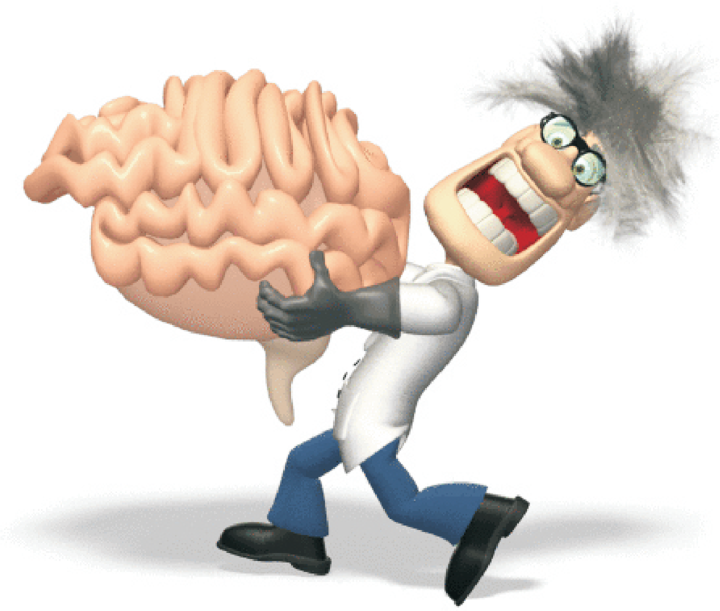

सर क्यों
दाँत फाड़ रहा है

(प्रथम हास्य-व्यंग्य संग्रह का नवीनतम साज-सज्जा के साथ पुनर्प्रकाशन)

धर्मपाल महेन्द्र जैन

किताबगंज प्रकाशन
हिंदी साहित्यिक पुस्तकों के भारतीय प्रकाशक

सर्वाधिकार © धर्मपाल महेंद्र जैन

संस्करण : सन् 2020

प्रकाशक : किताबगंज प्रकाशन

ICS (रेमण्ड शोरूम), राधाकृष्ण मार्केट
SBI बैंक के पास, गंगापुर सिटी–322201
जिला–सवाई माधोपुर (राजस्थान) INDIA

kitabganj@gmail.com
facebook.com/kitabganjbooks
www.kitabganj.com
+91-8750-660-105

संपादन : डॉ. प्रमोद सागर
आवरण : देवेन्द्र शर्मा
डिजाईनर : Vakeel Zee
मुद्रक : Thomson Press (INDIA) Limited
ऑनलाईन : www.amazon.in

ISBN : 978-93-89917-30-7 (पेपरबैक)

मूल्य : ₹ 200/- (भारत में) $ 7.95 (U.S.A.) $ 9.99 (CAN.)
Price : $ 10.95 (AUS.) £ 6.50 (U.K.) € 6.95 (EURO)

ISBN : 978-93-89917-31-4 (हार्डकवर)

मूल्य : ₹ 400/- (भारत में) $ 14.95 (U.S.A.) $ 18.99 (CAN.)
Price : $ 20.95 (AUS.) £ 11.50 (U.K.) € 12.95 (EURO)

सर क्यों दाँत फाड़ रहा है द्वारा धर्मपाल महेंद्र जैन
Sar Kyon Daant Faad Rahaa Hai *by* Dharmpal Mahendra Jain

पापा *और* **बाईसा**

को...

अपनी बात

सर क्यों दाँत फाड़ रहा है संकलन की रचनायें 1976–1983 के समय की हैं। इन्हें लिखते हुए मैं सोचता था कि मानवीय प्रगति के साथ ये विषमतायें और विद्रूपतायें क्षीण हो जाएँगी और हमारा समाज कुछ बेहतर हो जाएगा। पर ऐसा नहीं हुआ। इन इकत्तीस व्यंग्य निबंधों के माध्यम से जिन मुद्दों पर प्रतिरोध दर्ज हुआ था, उनमें से सिर्फ एक ही विषय 'टेलीफोन लीला' की कठिनाइयों से हमें मुक्ति मिली। जो 'लैंडलाइन टेलीफोन' चार दशकों पहले पीड़ादायी थे, अब मोबाइल बन कर एक दोस्त की तरह जीवन के अभिन्न अंग हो गये। शेष तीस व्यंग्य निबंधों के मुद्दे आज भी ज्वलंत हैं। ये अब भी प्रासंगिक हैं। इसलिए यह किताब सन् 1984 में इसके प्रथम प्रकाशन के बाद अब फिर से आप के बीच है।

मैंने चाहा था इस किताब की भूमिका आदरणीय हरिशंकर जी परसाई लिखते। सन् 1982 में उनसे इस हेतु विनम्र आग्रह किया तो उन्होंने चार पंक्तियों में सफल व्यंग्य लेखन के लिए एक सूत्र लिख दिया और यही इस किताब का पुरोवाक् बना।

बालेंदु शेखर तिवारी जी की रंग चकल्लस (1985) में, आजकल (1985), मधुमति (1986) एवं अन्य कई पत्र–पत्रिकाओं में इस पुस्तक पर समीक्षाएँ प्रकाशित हुईं एवं कुछ चर्चा सत्र भी हुए।

उसके बाद हम सन् 1993 से न्यूयॉर्क और फिर टोरंटों में बस गये। और फिर 'साहित्यिक' लिखना बहुत कम होता गया। लगभग 25 साल बाद नियमित लिखना शुरू हुआ तो '**इस समय तक**' (कविता संकलन – 2019) और '**दिमाग वालो सावधान**' (व्यंग्य संकलन – 2020) प्रकाशित हुए।

'**सर क्यों दाँत फाड़ रहा है**' का पुनर्प्रकाशन आवश्यक लगा तो नॉटनल ने इसे अपने पोर्टल पर ईबुक के रूप में प्रकाशित किया।

अब इसे पुनः पुस्तक का आकार देने के लिये **किताबगंज प्रकाशन** के **प्रमोद सागर** जी एवं उनकी टीम का हार्दिक आभारी हूँ।

टोरंटो, 26 अगस्त 2020

–धर्मपाल महेंद्र जैन

अनुक्रम

सर क्यों दाँत फाड़ रहा है	13
हवाई अड्डा लाना है	17
एक अदद तत्व	20
साहब के दस्तखत	23
खेल मंत्री उवाच	26
उधार वर्ष मनाना है	30
जा तुझको जमी दुकान मिले	34
टेलीफोन लीला	37
चलो साफा भी मिलेगा	41
ब्रीफकेस प्रसंग	44
कंडक्टर–लिपि	48
नदी लाओ समिति	51
महँगाईबाला का स्वयंवर	54
आखिरी तारीख का इंतजार	58
राष्ट्रीय खेल के लिए बैठक	62
फाइल इतनी दीजिए	66

सहमति की संस्कृति	70
खामोश! प्रवेश चालू है	73
ऐसे मत बरसना बदरवा	76
कलमकार! नारे रचो	79
सत्ता का समीकरण	84
आदमी के बच्चे	87
धन्य हैं ये ऋषि–मुनि	91
अच्छी सरकार	94
जंगल : सरकारी जंगले में	97
अंधों को आँख वाले अच्छे नहीं लगते	100
दफ्तर का सप्ताह : पाँच दिन	103
लाभ–शुभ के चौघड़िए में	106
दीवारें, समाज का चेहरा	110
सफरनामा एक डॉक्टर का	113
डाका डालने की क्या जरूरत	118

सर क्यों दाँत फाड़ रहा है

इन दिनों पुलिस की पूछताछ चल रही है। पुलिस वालों को पुलिस वाले ही डंडे मार रहे हैं और जनता देख रही है। अखबार वाले छाप रहे हैं। सरकार कुछ करने के बजाय खट्टे-मीठे चटखारे ले रही है। अभी तक पुलिसगण रिश्वत खाते थे, अब बलात्कार भी करने लगे हैं। पहले जिन्दा अखबार जलाते थे, अब जिन्दा आदमी जलाने लगे हैं। पहले वकीलों के संग आँख लड़ाते थे, अब हाथ-पाँव लड़ाने लगे हैं। पुलिस वाले पहले सरकारी कर्मचारी थे, अब खुद को ईदी अमीन और गृहमंत्री समझने लगे हैं। हमारे यहाँ आवारा पशुओं को काँजी हाउस में और आवारा आदमियों को थाने में रखने की व्यवस्था है। पुलिस वालों को थाने के आस-पास रखने का कुछ यही कारण लगता है।

बिना वर्दी के पुलिस वाले ताबूत लगते हैं। वर्दी उन्हें सामाजिक मान्यता देती है इसलिए वे घर में भी वर्दी पहन कर सोते हैं। रात-दिन चोरों, उठाईगिरों में रहने के कारण उनकी नस्ल बदल गई है। वे अब बदला-बदला व्यवहार करने लगे हैं। लोग पुलिस को मौके की तलाश में रहने वाला चलता-पुर्जा कहते हैं। कुछ समय पहले की बात है, तब मेरे कपड़ों में जेबें थी। जेब में रुपये होते थे। एक दिन मेरी जेब कटी। जेबकतरा भागने लगा। मैं चिल्लाने लगा। सारा नगद, नारायण हो गया था। मैंने आँखें बन्द कर प्रभु स्मरण किया। आँखें खोलीं तो साक्षात प्रभु खड़े थे, पुलिस वेशभूषा में। वे

मुझे थाने ले गए। रपट लिखी। मैंने उन प्रभु को प्रसाद चढ़ाया, प्रभु प्रसन्न नहीं हुए, उन्होंने और प्रसाद माँगा। मेरी दूसरी जेब प्रसाद में खाली हो गई। न जेबकतरा मिला, न प्रभु ही लौट कर आए। तब से मैं पुलिस को राम की माया मानता हूँ। धर्मग्रन्थों में प्रभु के तैंतीस करोड़ अवतार माने गए हैं। पुलिस–प्रभु पंचनामा लिखते, गाली उच्चार करते, वलन–समाचार पढ़ते और जादुई डंडे के करतब दिखाते, यदा–कदा टॉकिजों और बस स्टैंड पर लाइन सीधी करवाते हुए मिल जाते हैं। इस दैनिक लीला से ये तनख्वाह से चार गुनी गैर–सरकारी तनख्वाह पका लेते हैं। सरकार की दस हजार रुपट्टी तो ये और इनकी मोटर साइकिल ही पी जाती है।

पुलिस का कागजी उद्देश्य जनसेवा और देशभक्ति है। वे खाकी नेकर और कमीज में लट्ठ बजाते हैं तो जनसेवा हो जाती है। सोने के बिस्कुट और अफीम की ट्रकें रातों–रात पार करवा कर ये गेहूँ के दस–बीस थैले पकड़ लेते हैं। ये इसे देशभक्ति मानते हैं। पुलिस की फुर्ती और चतुराई बेमिसाल है। नेताजी के घर पन्द्रह–बीस हजार रुपयों की चोरी हो जाए तो पच्चीस–पचास लोगों को पकड़ लाते हैं। गाँव में डकैती डल जाए तो इन्हें सिर्फ खाली पेटियाँ ही गाँव के बाहर मिल पाती हैं। बस और ट्रेन लुट जाएँ तो ये जंगल का चप्पा–चप्पा छान कर बकरे और मुर्गे पकड़ लाते हैं। चोरी–डकैती, लड़ाई–झगड़े और दंगे–फसाद होते रहें तो इनकी दाल–रोटी निकल जाती है। अन्यथा तंगी में बाबा रविशंकर शुक्ल के जमाने की टेबल–कुर्सी निकाल कर थाने के सामने बैठ जाते हैं। जनरल चेकिंग भी करते हैं और मंदिर का चन्दा भी वसूल लेते हैं। दौरों में मंत्रियों के आगे–पीछे मंडराते हुए पुलिस वाले मंत्री को इज्जतदार बनाते हैं। सिविल कपड़ों में इनकी सभा में भीड़ भी बढ़ाते हैं। पुलिस निश्चित ही सरकार की बिगड़ी संतान है। खतरे के वक्त सरकार पुलिस को कोसती है और ऐसा बजाती है जैसे पुलिस इंसान नहीं विधानसभा की टेबलें हो। अन्य दिनों में पुलिस फिर शेर हो जाती है और सरकार मिमियाने लगती है।

पुलिस की वर्दी पहले सूती थी। वे तब कम सूतते थे। अब वर्दी मक्खन–डग और टेरीकॉट की हो गई, इसलिए ज्यादा सूतते हैं। आजकल शराब के ठेकों की तरह थानों की भी बोलियाँ लगने लगी हैं। समझदार ऊँची बोली लगाकर कमाऊ थाना पा लेते हैं। इसमें असफल थानेदार, बेचारे, दूसरे दिन लाईन–अटैच हो जाते हैं। इसलिए सिपाही थानेदार के लिए रिश्वत लेता है। थानेदार सी. आई. साहब के लिए रिश्वत लेता है। सी.आई. के लिए डी. एस.पी देवता है और एस.पी. भगवान। वह उन्हें नेवैद्य चढ़ाता है। इस बड़े रावले में बहुत–सी हाथी पोलें हैं।

पुलिस ने फ्री में रोजनामचे में रिपोर्ट लिखना बन्द कर दिया है। रिपोर्ट लिखने से वैसे भी उनकी छवि बिगड़ती है। अपराध–संख्या बढ़ जाती है। छवि के डर से पुलिस खुफिया कुत्तों के साथ रहने लगी है। दोनों को छूत की बीमारी हो गई है। ज्यादातर कुत्ते खूंखार हो गए हैं और पुलिस भौंकने लगी है। शराब, गांजा, भाँग, अफीम और चरस की हल्की–सी गंध इनके दिमाग का जीरो बल्ब प्रज्वलित कर देती है। अबला नारी को देख ये पुरुषार्थी बन जाते हैं। इनके लिए कानून और व्यवस्था अचार और मुरब्बे जैसी हो गई है। उंगलियाँ चाटते हुए ये प्रजातंत्र को खाते–चबाते रहते हैं। हड़ताल, जुलूस, दुकानों की लूट–पट्टी और सिटी बसों के अग्नि–यज्ञ से पुलिस भी प्रभावित हुई है। वह आन्दोलन करने लगी है। नटवरलाल जेल से भाग रहे हैं, डाकू थाना लूट रहे हैं और पुलिस नारे लगा रही है 'जो हमसे टकराएगा, हवालात में जाएगा।'

भैंस और पुलिस दोनों ही रास्ते में अड़े रहते हैं। भैंस कहने–सुनने पर रास्ता छोड़ देती है पर पुलिस दक्षिणा लिए बिना रास्ता नहीं छोड़ती। एक वाकया याद आ रहा है। उस दिन ऑटो से स्टेशन जा रहा था। पुलिस ने ऑटो वाले को बुलाया और कहा– क्यों बे भाई साहब, कहाँ जा रहे हो? मुझे इस वाक्य रचना पर हँसी आ गई। पुलिस वाले ने मुझे घूरते हुए कहा– 'सर क्यों दाँत फाड़ रहा है? वे बड़बड़ाने लगे– 'श्रीमान को दो झापड़ देंगे तो

बत्तीसी बाहर पधार जाएगी।' मुझे ध्यान आया पुलिस वाले शिष्टाचार सप्ताह मना रहे हैं। मैं चुपचाप सह गया। शिष्टाचार सप्ताह नहीं होता तो वे आदिम गालियों से मेरा अभिनंदन करते। ऑटो चालक समझदार था। रोजी-रोटी कमाना चाहता था सो उसने एक सफेद लिफाफा सिपाही को थमा दिया। सिपाही ने लिफाफा खोला, लिफाफे में फूँक मारी और नोट गिन लिए। मुझे लगा पुलिस को शिष्टाचार सिखाना कोयले को साबुन से धोकर सफेद करने जैसा है।

आम जनता की मनोकामना है, अब पुलिस को छवि सुधारना चाहिए। यह बात मैंने अपने मित्र पुलिस अधिकारी से कही। वे मूछों पर ताव देते हुए बोले- 'बरखुर्दार! कुत्ते की पूँछ सीधी हो सकती है पर....।

हवाई अड्डा लाना है

हम समय रहते डूबत पार्टी से त्यागपत्र देकर बढ़त पार्टी में घुस आए थे। तबसे नई पार्टी के जुलूस और जलसों में हम अपनी निष्ठा सिद्ध करने जाते थे। इसी तारतम्य में गाँधी हॉल में आयोजित पिछड़ापन-निवारण बैठक में हम भी सम्मिलित हुए। बैठक में विभिन्न विभागों के अधिकारी थे। गोटीमलजी सांसद थे, विधायक थे, उनके विशिष्ट चमचे थे और बाकी हम थे। गाँधी हॉल के रिक्त स्थान की पूर्ति करने वाले हम, फिलर। मीटिंग नौ बजे होनी थी और यहाँ बारह बजने को थे। इसलिए भी मीटिंग शुरू होने की संभावना नजर आ रही थी। जो अभिजात्य नेता थे, उन्होंने खादी पहनी थी। वे बगुले जैसे चकाचक लग रहे थे। जो खाली नेता थे, वे मसनद पर बैठे थे और मुफ्त की सिगरेट का दम मार रहे थे। जो कथित नेता थे, वे मसनद के नीचे थे और वार्ड विभाजन पर सिरफोड़ी कर रहे थे। हम इन सब में नहीं थे। हम तो सच्चे कार्यकर्ता थे, जो कार्य नेता कहते थे, वही करते थे। इसलिए हम 'जी-हजूरी' मुद्रा में फर्श पर जमे थे।

घड़ी का बड़ा काँटा, छोटे काँटे के ऊपर आ गया या कि बड़ा काँटा छोटे का शोषण करने लगा। यही उपयुक्त समय था पिछड़ेपन पर चर्चा करने का। एक मजदूरनुमा नेता खड़े हुए। खच्चर और गधे हाँकते हुए वे राजनीति की भेड़ें पालने लग गए थे। वे दिन-रात मजबूत ट्रेड-यूनियन बनाने के चक्कर में रहते थे। उन्होंने गला फाड़ कर कहा- 'हमारे जिले में उद्योगों व कल-कारखानों की कमी है। अब वक्त आ गया घर-घर उद्योग

खुलना चाहिए। इससे हजारों लोगों को रोजगार मिलेगा। पार्टी की तगड़ी ट्रेड-यूनियन बन जाएगी, जो देर-सबेर काम आएगी।'

उनके बाद लोगों ने सेठजी को उठाया। वे बड़े वितरक थे और जादूगर भी। कंकड़ को अनाज और घासलेट को पेट्रोल बनाना उनका एक रात का काम था। जिला बैंक उनके कार्यकाल में स्वर्गवासी हो गई थी। उन्होंने कहा- 'उद्योग तो मैं ही आज खोल दूँ। कच्चे माल का परमिट चाहिए और कम ब्याज पर बैंक से लोन चाहिए। माल की सरकारी खरीद हो और उद्योगों को सरकारी संरक्षण मिले। माल इधर-उधर करने के लिए पक्की सड़कें हों तो इससे जनता को ही लाभ होगा।'

इस पर बस व्यवसायी चौंके। पक्की सड़कों पर निगम की नजर लग जाती और उनके रूट बर्बाद हो जाते। उन्होंने सेठजी से माइक छीन कर कहा- 'मैं सेठजी की बात का समर्थन करता हूँ। गाँव-गाँव में बैंक खुलना चाहिए, गाँव-गाँव पक्की सड़कें तो बन नहीं सकतीं। उनकी आँखें ठेकेलाल से चार हो गई। ठेकेलाल बसपति के मित्र थे, इसलिए उन्होंने आगे कहा- 'सर्वांगीण विकास के लिए पहुँच मार्ग बनना चाहिए। पुलिया बनना चाहिए, टूट-फूट की मरम्मत होना चाहिए।'

माइक ठेकेलाल के पास पहुँच गया। उन्होंने शिकायत की कि जिले के हिसाब से राहत कार्य काफी कम है और निर्माण कार्य तो दाल में नमक के बराबर। सांसद श्री गोटीमल जी सबका इशारा समझ रहे थे। चुनाव में सेठजी का पेट्रोल था, बसपति की गाड़ियाँ थी और ठेकेलाल का पैसा था। वे चिंतित बनने लगे। जिले की समस्याओं की सही तस्वीर सेठ, बसपति और ठेकेलाल थे। उनका गणित नहीं जमता था इसलिए जिला पिछड़ा था। पिछले सांसद ने इनका इशारा नहीं समझा तो उनका पत्ता कट गया। पर गोटीमल जी समझते थे, उद्योगों से सेठ को खतरा था और सड़कों से बसपति को। ठेकेलाल निश्चिंत थे। उन्होंने ऐसे निर्माण कार्य किए थे कि जिंदगी भर उनकी मरम्मत चलती रहती।

वाकई जिला पिछड़ा था। कभी किसी मंत्री ने मुँह इधर नहीं मारा

था। गोटीमल जी भी अपनी गोटी जमाने के लिए केन्द्रीय नेताओं को इधर लाना चाहते थे। केन्द्रीय नेता आएँ कैसे? उन्हें बोध हुआ और वे माइक संलग्न हो गए।

वे उस्ताद थे हम जमूरे। दो-दो हाथ तालियाँ बजाईं। हमारा प्राथमिक कर्तव्य पूरा हुआ। सांसद ने कहा-'हमारा जिला पिछड़ा है। पिछले पैंतीस सालों से पिछड़ा रहा है। इस मामले में प्रधानमंत्री को हस्तक्षेप करना चाहिए तथा तत्काल न्यायिक जाँच करवानी चाहिए। वे बोलते-बोलते रुक गए। हम समझ गए। हमने समर्थन में तालियाँ बजाईं। तालियाँ उनके लिए पेट्रोल था। वे पुनः बोलने लगे।

उन्होंने अधिकारियों को देखा। अधिकारी खुश थे कि प्रधानमंत्री का दौरा होगा तो हर विभाग को अतिरिक्त सैंक्शन मिलेगी। सरकारी मकान पोते जाएँगे। सड़कों की मरम्मत होगी। रेस्ट हाउस सँवारे जाएँगे। इंतजामी बैठकें होंगी। बड़े अधिकारी आएँगे और सरकारी निधि का गणित करेंगे। जेबों को सार्थकता मिलेगी। गोटीमल जी ने कहा- 'प्रधानमंत्री व्यस्त हैं, पिछड़ेपन का हल उन्हीं के पास है। उन्हें यहाँ लाना पड़ेगा। यहाँ लाने के लिए हवाई जहाज चाहिए, हवाई जहाज के लिए हवाई अड्डा चाहिए। पिछड़ापन दूर करने के लिए हवाई अड्डा चाहिए।' वे बोलते-बोलते रुक गए। इस बार सिर्फ तालियों से काम नहीं चलना था। एक कार्यकर्ता ने उनके गले में हार डाला। कैमरामैन ने फ्लश चमकाई तो वे पुनः बोलने लग गए।

सेठजी को हवाई अड्डे से फायदा था। बसपति को नुकसान नहीं था। ठेकेलाल को ठेका मिलना था और मजदूरों को रोजगार। अधिकारियों और सांसद गोटीमल जी को यदा-कदा हवाईखोरी का सरकारी सुख मिलना था। सब प्रसन्न थे। बस स्टैंड और रेलवे स्टेशन पर नेताओं का स्वागत करने में अब शर्म आने लगी थी। नेताओं के स्वागत के लिए हवाई अड्डा जरूरी था। गोटीमल जी ने नाम के अनुरूप चाल चली थी। सबकी जबान पर चढ़ गया था हवाई अड्डा, हवाई अड्डा, हवाई अड्डा, हमारी माँग हवाई अड्डा। उनकी जय जयकार हो रही थी और हम नारा लगा रहे थे- 'पिछड़ापन दूर भगाना है, हवाई अड्डा लाना है।'

एक अदद तत्व

हम दर्शन को 'फाकालॉजी' भी कहते हैं, पर मैं फाक नहीं रहा हूँ। सच कह रहा हूँ। हमारे प्राचीन ग्रंथों में पंच-तत्वों को बखाना गया है। पृथ्वी, आकाश, अग्नि, जल और वायु। ये असार संसार के सार हैं इसलिए तत्व हैं। मैंने एक और ऐसे ही तत्व की खोज की है।

संसार में सार नहीं है यह बात चमचों और बिचौलियों के गले नहीं उतरती है पर हारे हुए नेता, रिटायर्ड कर्मचारी आदि-आदि इस सत्य को स्वीकारते हैं। इसी विश्वास पर मेरी, भगवान रजनीश और महर्षि महेश योगी की दुकानें चल रही हैं। फिर भी, जो लोग विज्ञान से प्रभावित हैं वे तर्क कर सकते हैं कि तत्व एक सौ अठारह हैं, कालान्तर में ज्यादा भी हो सकते हैं और संसार का सार ये तत्व ही हैं। मैं इनसे भी सहमत हूँ। बुद्धिजीवी कहलाने के लिए हर टोपी में सिर घुसाना पड़ता है। इसलिए मैंने दर्शन, विज्ञान, साहित्य, कला आदि लफड़ों की एक संविद टोपी सिला रखी है। यह टोपी मेरी प्रतिभा का पर्दाफाश करती है। इस टोपी को धारण करके मैं एक फॉर्मूला दे रहा हूँ। दर्शन के छह तत्व बराबर विज्ञान के एक सौ अठारह तत्व। आप जानते हैं न, पानी, ऑक्सीजन और हाइड्रोजन से बना है। पृथ्वी लोहा, तांबा, सोना-चाँदी आदि धातु-अधातु एवं अन्य तत्वों से अटी पड़ी है। इसलिए मेरा फार्मूला सही है। सही क्यों न हो, इसे खोजने में मैंने सौ वर्षों तक सतत् साधना की है। क्या हो सकता है यह तत्व? मैं आपसे

इसलिए पूछ रहा हूँ क्योंकि मैंने अपना नाम नोबेल पुरस्कार के दावेदारों की सूची में भी खड़ा करवा दिया है।

हो सकता है तत्वों के बारे में आपका ज्ञान सीमित हो। इसलिए मैं तत्वों की सामान्य परिभाषा बता देना चाहता हूँ। 'तत्व' वह है जिसमें अन्य कोई पदार्थ नहीं निकले। वह लोहा है तो तोड़ने-मरोड़ने पर भी लोहा ही रहे, दस-बीस हजार रुपये दे कर सोना न हो जाए। वैसे तत्व की बात भारतवासियों के गले उतरेगी नहीं। अपने यहाँ इस कदर मिलावट है कि एक तत्व में दो-तीन अन्य तत्व निकल ही आते हैं। खैर, तत्व वह है जो मिलावट रहित है, अपूर्व और निजी सत्ता वाला है। मैंने ऐसे ही एक 'तत्व' की खोज की है।

मैंने जो तत्व खोजा है वह सक्रिय है। लिजलिजा कम है, ठोस ज्यादा है। भारी है, सस्ता है और हर जगह प्राप्य है। लोग उससे डरते हैं। सरकार उस पर इनाम देती है और थानों की आवर्त सारणी में उसका नाम चस्पा रहता है। यह तत्व है 'गुंडा तत्व'। सुप्रसिद्ध 'गुंडा-तत्व' शहरों में भारी तादाद में और गाँवों में कम तादाद में पाया जाता है। यह इतना विस्फोटक है कि इसे गहरे नीले रंग की बंद पुलिस गाड़ियों में भर कर इधर से उधर ले जाया जाता है। भय के मारे पुलिस इसे रात में बारह ताले के पिंजरे में और दिन में बेड़ियों में रखती है। प्रारम्भिक अवस्था में यह जेब कतरा, उचक्का, चोर आदि के रूप में मिलता है। जेलों में छँटाई-कुटाई के बाद इसका असली रूप सामने आने लगता है। चार-छः बार जेल की हवा खाकर यह शुद्ध 'गुंडा-तत्व' बन जाता है। सत्तर करोड़ जनसंख्या वाले देश भारत में स्वाभाविक ही गुंडा-तत्व के भंडार भरे पड़े हैं।

गुंडा तत्व में भौतिक और रासायनिक दोनों गुण होते हैं। भौतिक गुण वे होते हैं जिनसे चरित्र में कोई बदलाव नहीं आता। मसलन जनता मारे या कोर्ट दो-चार साल की सजा दे दे, 'गुंडा-तत्व' गुंडा तत्व ही रहता है। रासायनिक गुण वे होते हैं जो चरित्र बदल देते हैं। जैसे हाइड्रोजन और

ऑक्सीजन के संयोग से पानी बनता है वैसे ही गुंडा तत्व और पैसे के संयोग से नेता बनते हैं। गुंडा, बुद्धि के संयोग से स्मगलर बनता है। गुंडा, धर्म से क्रिया कर आत्म समर्पण करता है। गुंडा तत्व, पैसे और धर्म से एक साथ क्रिया कर भगवान का आधुनिक अवतार बन जाता है। जिस तरह प्राणवायु ऑक्सीजन के बिना जगत का अस्तित्व नहीं है, वैसे ही गुंडे के बिना समाज की रचना अधूरी है। वह समाज में रहते हुए भी असामाजिक तत्व कहलाता है। उसमें भीड़भाड़ और निर्जन, दोनों जगहों में अपना कमाल दिखाने की क्षमता होती है। मुझे लगता है गुंडा तत्व में चुम्बकीय गुण भी होते हैं जो पुलिस को भी प्रभावित करते हैं और दूध से धुले अधिकारियों को बहला फुसलाकर घपले, घोटाले और काण्ड आदि को जन्म देते हैं।

आज के युग में गुंडा तत्व उपयोगी तत्व है। वह भगवान की महत्ता स्थापित रखता है और लोगों में भय बनाए रखता है। सत्य को झूठ और सफेद झूठ को शपथपूर्वक सच साबित करने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। गुंडा तत्व राज्य परिवहन निगम की अटाला गाड़ियों तथा रेलगाड़ी के जीर्ण-शीर्ण डिब्बों का दाह-संस्कार करता है। कमजोर पटरियों को उखाड़ फेंकता है। टॉकीजों की खटमलमयी कुर्सियों की चीरफाड़ करता है, दुकानें लूटता है और सुसंस्कृतज्ञ बनने के लिए गुरुजनों को ठोक-बजाकर समझाता है। गुंडा तत्व भारतीय फिल्मों की आत्मा है। यहाँ इसे 'विलेन' कहते हैं। दर्शक उसे देखते हैं और उसका चुम्बकीय प्रभाव ग्रहण करते हैं।

मैं दो अनुरोध कर रहा हूँ। पहला सरकार से कि वह गुंडा तत्व का विदेशों को निर्यात करे तथा निर्यात की संभावनाएँ जानने के लिए मुझे विदेश भेजें। दूसरा अनुरोध समाज से है कि वह गुंडा तत्व की अमूल्य प्रतिभा को परखे। रहीमदास जी ने कहा है "बड़े बुराई ना करे, बड़े न बोले बोल। रहीमन हीरा कब कहे लाख टको मेरो मोल।" इसलिए हीरा रूपी तत्व को समाज में उचित स्थान मिलना चाहिए और मेरी खोज को एक सामाजिक तत्व की खोज माना जाना चाहिए।

साहब के दस्तखत

हम साहब के बड़े कद्रदाँ हैं। जब भी उनके चैम्बर में उनकी झलक मिलती है, हमारी भोज्य पाई फाइलों में कागजात उफनने लगते हैं। कागजात साहब के पेन का स्पर्श पा वैतरणी पार करना चाहते हैं, इसलिए तारक मुद्रा में साहब पूछते हैं, क्या करना है? हम कहते हैं दस्तखत सर। वे साहबी अंदाज में पूछते हैं, कहाँ करना है? हम उंगली से रिक्त स्थान बता देते हैं। साहब अपनी प्रतिभा को सुरक्षित रखने के लिए पूछ बैठते हैं– 'सब ठीक है न, देख लिया है न।' हम हमारे शरीर को 'यस सर नुमा' झटका देते हैं। उनके दस्तखत के बाद कागज हुक्म हो जाता है और चूहा पहलवान। दस्तखत के इस विटामिनत्व के कारण हम सब साहब के कद्रदाँ हैं, चमचे हैं और वह सब कुछ हैं जो भाषा के परे है।

हमने कई साहब देखे हैं। छोटे–बड़े कई साहब हमारे हाथ के नीचे से निकले हैं और निकलते ही उनके दस्तखत का दर्जा ऊँचा हो गया है। इसके लिए वे हमें आज तक याद करते हैं और अपने दायें–बायें कहीं रख लेते हैं। घोड़े के पीछे और अफसर के आगे चलना हमारी परम्परा के विरुद्ध है क्योंकि घोड़ा पीछे से दुलत्ती और अफसर सामने से दस्तखत मारता है।

साहब नए–नए आए थे, इसलिए इधर कमाऊ महकमा मिला। पहले दिन उन्होंने दो चार दस्तखत ही किए। उनकी धीमी गति से सारे विभाग में खलबली मच गई। जनता विरुदावली पढ़ने लगी। हमसे रहा नहीं

गया। साहब के पास पहुँचे और अदब के साथ कहा– सर, बहुत सारे जरूरी कागजातों पर आपके दस्तखत होना है सर, दस्तखत थोड़ी तेजी से हो जाएँ तो अच्छा रहे, आप कहें तो मैं कुछ मदद कर दूँ सर। उनका युवा खून मुझे अतिक्रमण के लिए रोकना चाह रहा था, कि मैंने जन आक्रोश की उन्हें खबर दे दी। वे फटाफट दस्तखत करने लगे। तब से वे तेजी से दस्तखत करने में लगे हैं। उनके कागज चल रहे हैं, प्रशासन चल रहा है, और सरकार चल रही है।

हम दस्तखत की गति से देश की नब्ज भाँपते हैं। पहले जब साहब अंग्रेजी में रामलाल लिखते थे, फाइलें देरी से निबटती थीं। दूसरे अधिकारी उनके दस्तखत देख अंदाज लगा लेते थे, 'नई भर्ती है, इस पर रौब गाँठो।' इस कारण हमारी फाइलें वापस आने लगीं। हमारा धंधा बैठ गया। साहब उदास हो गए। उनका तख्ते–ताउस डगमगाता नजर आया। हमारे साहब का अपमान हमारा अपमान था। हमसे रहा नहीं गया। हमने साहब को गुरु मंत्र दिया– 'सर आपके दस्तखत साहबों जैसे नहीं हैं सर, साहब के दस्तखत की भाषा नहीं होती सर। दस्तखत का पहला अक्षर अंग्रेजी में तो दूसरा हिन्दी, तेलगु या हिब्रू का होता है सर। बाकी तो लाइन स्केच रहता है सर। इसलिए साहब के दस्तखत की कोई लिपि नहीं होती सर। साहब के दस्तखत बड़े होते हैं विशालता बताने वाले, संकुचित स्वभाव बताने वाले छोटे–छोटे नहीं होते सर। अनुभव और क्षमता से ज्यादा दम दस्तखत में होता है सर।'

साहब ने हमारी बात गाँठ बाँध ली। हफ्ते भर दस्तखत बनाना ही सीखते रहे और उन्होंने दस्तखत विधा को नए आयाम दिए। अब साहब के दस्तखत में प्रवाह है, ओज है, गोपनीयता और गंभीरता है, इसलिए उसमें शक्ति है। गंभीरता से अध्ययन करने वालों को साहब के दस्तखत रोनाल्ड रेगन, रोमियो रौलां या राजीव गाँधी का व्यक्तित्व प्रस्तुत करते हैं, रामलाल का नहीं। अब उनके दस्तखत से चली फाइलें बेखटके दौड़ती हैं और मैराथन जीतकर लौट आती हैं।

साहब के दस्तखत इतने लोकप्रिय हैं कि आम लोग साहब से ज्यादा साहब के दस्तखत को पहचानते हैं और छुप–छुप कर साहब के दस्तखत साधने की कोशिश करते हैं। उनके दस्तखत से अब तक इतने काम हो गए हैं, जो साहब जैसे दस बीस साहब, जन्मों नहीं कर सकते। धन्य हैं साहब के दस्तखत। हम साहब के इसलिए भी कद्रदाँ हैं कि साहब आँख मींच कर दस्तखत करना सीख गए और इतनी ऊँचाई पर पहुँच गए।

जब साहब का तबादला होगा, साहब और ऊपर उठेंगे, और ज्यादा जरूरी कागजों पर तब दस्तखत करेंगे। हम तो सेवक हैं, छोटे मुँह बड़ी बात क्या करना, पर साहब के दस्तखत देखकर हमें खुशी होती है और होगी कि हमने उन्हें दस्तखत करना सिखाया और काबिल बनाया।

खेल मंत्री उवाच

भाइयों एवं बहनों! मैं मंत्री हूँ इसलिए भाषण दूँगा। मैं खेल मंत्री हूँ इसलिए खेलों पर भाषण दूँगा और आप सभी बुद्धिजीवी हैं इसलिए मैं खेलों पर बुद्धिजीवी भाषण दूँगा। हमारे देश में कई खेल हैं और कई खिलाड़ी हैं पर दुःख इस बात का है कि जो हमारे खेल हैं, देश के खास खेल हैं उनके अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के खिलाड़ी हमारे यहाँ नहीं हैं। जैसे कबड्डी है, खो-खो है, तीरंदाजी है, हॉकी है, शतरंज है, कई खेल हैं ऐसे। दूसरी ओर जो हमारे अपने खेल नहीं हैं, हमने विदेशियों से सीखे हैं उनके कई अन्तर्राष्ट्रीय खिलाड़ी हमारे यहाँ हैं। क्रिकेट में कितने सारे खिलाड़ी हैं, बैडमिण्टन, बिलियर्ड्स और टेबल टेनिस आदि में खिलाड़ी हैं। यह खुशी की बात है कि विदेशी खेलों में हमारा दखल ज्यादा है। इससे दो बातें साफ हैं, पहली-हर विदेशी चीज हमें अच्छी लगती है, दूसरी-हर देशी चीज हमें घटिया लगती है।

यह वस्तुनिष्ठ विश्लेषण है। वैसे मैंने इस बात को हर जगह कहा है। आप बुद्धिजीवी हैं इसलिए आप से भी कह रहा हूँ कि क्यों न हम विदेशी खेलों को अपना लें? देश में जितने विदेशी खेल आएँगे उतने अच्छे खिलाड़ी हमें देश में मिलेंगे। इससे विदेशों में हमारी प्रतिष्ठा बढ़ेगी। इसलिए मैंने अपने विभाग से कहा है कि कोई खेल नीति बनाने के पहले हमें कुछ खास-खास देशों का भ्रमण करना चाहिए। जैसे अमेरिका का मुख्य खेल

बेसबॉल है जबकि इसका नामोनिशान हमारे यहाँ नहीं है। हमें ऐसे खेल तुरन्त देश में लाना चाहिए। मुख्य बात खेल नीति की है। विदेश भ्रमण के दौरान हमें विशेषत: यह देखना होगा कि किस खेल को खेलने में कितना दमखम लगता है। ज्यादा दमखम वाले खेल हमारे यहाँ की आबोहवा के हिसाब से हमारे काम के नहीं हैं। हमारे यहाँ सिर्फ हल्के-फुल्के खेलों की जरूरत है। मैं पूछता हूँ खेल में दमखम की क्या जरूरत है? खेल में बुद्धि की क्या जरूरत है? खेल में सिर्फ खेल होना चाहिए।

आप जानते ही हैं कि हम तृतीय विश्व के देश हैं। हम तृतीय विश्व के देश इसलिए हैं कि हमारे यहाँ अधिकांश आबादी को पोषक आहार नहीं मिलता। पोषक आहार नहीं मिले तो दमखम आएगा कहाँ से? इसलिए मैं चाहता हूँ कि हम तृतीय विश्व के उन देशों का भी अध्ययन करें जहाँ से बिना पोषक आहार के भी अच्छे खिलाड़ी निकले हैं। हमें ऐसे ही खेल रास आएँगे। विदेशों में हमें यह भी देखना पड़ेगा कि कौन से ऐसे खेल हैं जिन्हें ज्यादा से ज्यादा खिलाड़ी एक साथ खेल सकते हैं। सत्तर करोड़ लोगों में से किसी खेल के लिए एक-दो खिलाड़ी ही चुनना बहुत कठिन काम है। प्रधानमंत्री के पास पहले ही से कई विवाद पड़े हैं। इसलिए संतुलन की दृष्टि से हम चाहते हैं कि किसी भी खेल में एक टीम दस-बारह लोगों की हो ही। इससे बेरोजगारी भी कम होती है और सब तरह के लोगों को प्रतिनिधित्व मिल सकता है।

खेलों के मामले में हमारा देश पिछड़ा हुआ है पर यह कोई गंभीर बात नहीं है। पहले हमारा देश विज्ञान के मामले में भी पिछड़ा हुआ था। हमने विदेशों से तकनीकें आयात कीं। उनके साथ बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाएँ लगाईं, हमारे वैज्ञानिक अब शांतिपूर्ण उपयोग के लिए बम बना रहे हैं। अंतरिक्ष में आर्यभट्ट के बाद 'एपल' परिक्रमा कर रहा है। हमारे देशवासी अंतरिक्ष में जा रहे हैं। हम खेलों के लिए भी ऐसा ही करना चाहते हैं। हम विदेश-भ्रमण कर खेलों की तकनीक आयात करेंगे, खिलाड़ी आयात करेंगे,

खिलाड़ियों के कलपुर्जे आयात करेंगे और उनकी 'एसेम्बलिंग' यहाँ करेंगे, मेड इन इंडिया। तब थोड़े ही समय में हम खेल और खिलाड़ी दोनों में आत्मनिर्भर हो जाएँगे।

जैसा कि मैंने प्रारम्भ में ही कहा था कि आप सब बुद्धिजीवी हैं और इसलिए मैं खेलों पर बुद्धिजीवी भाषण देने का इच्छुक हूँ। सही बुद्धिजीवी देश की बहुत बड़ी ताकत होते हैं। हम नीति बनाते हैं और सही बुद्धिजीवी उस पर चिन्तन करते हैं, नीति पर रचनात्मक साहित्य रचते हैं। वे जनता में सरकार की इमेज बनाते हैं। कुछ बुद्धिजीवी सिर्फ बुद्धिजीवी होते हैं, वे जिस पद पर बैठाए जाते हैं उसी कुर्सी को काटने लगते हैं। आप सही बुद्धिजीवी हैं इसलिए कुछ मुद्दे मैं आपके चिन्तन के लिए उठा रहा हूँ:

एक- ग्रामीण क्षेत्रों में अमेरिकी खेलों का विकास होना चाहिए। चूँकि ग्रामीणों ने पी.एल. चार सौ अस्सी के अन्तर्गत अमेरिकी दूध-दलिया बहुत खाया और पचाया है, इसलिए वे अमेरिकी खेल भी खेल सकते हैं।

दो- जिस तरह वीडियो टॉकीज गाँव-गाँव में खुल गए हैं और नवीनतम फिल्में गाँवों में पहुँच रही हैं, वीडियो गेम्स भी गाँव-गाँव में पहुँचना चाहिए ताकि लोग आधुनिकतम खेल, खेल सकें।

तीन- खेलों को अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा दिलाने हेतु हर खेल के लिए एक मण्डल बनाया जाना चाहिए। जैसे भरत नाट्यम, कठपुतली और नाच के कार्यक्रम विदेशों में होते हैं, आटिया-पाटिया, कबड्डी, खो-खो आदि के कार्यक्रम भी विदेशों में हों। इससे अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव भी बढ़ेगा और हमारे खेलों पर चर्चा भी होगी।

चार- देश में टेलीविजन का जाल बिछ गया है। अब गाँव-गाँव में एस्ट्रो टर्फ और सुपर टर्फ बिछाना जरूरी है। हमारे खिलाड़ी गली, मोहल्ले और सड़कों पर ही खेलते रहेंगे तो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अच्छा प्रदर्शन कैसे कर सकेंगे?

खैर यह सब तो आपके विचार-विमर्श के लिए है। हम हमारे स्तर

पर हर खेल के लिए एक–एक संघ, एसोसिएशन, फेडरेशन आदि बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। इससे खेलों का जल्दी विकास होगा। राजनीति खाद का काम करती है। सही राजनीति हो तो फसल जल्दी पनप जाती है और गलत लोग राजनीति करें तो फसल जल जाती है। हम पार्टी स्तर पर खिलाड़ी विंग बनाने की सोच रहे हैं। मैं अब आपका ज्यादा समय नहीं लूँगा। अगले चुनाव में हमें जनता से आदेश लेना है। अभी तो हम इसी बात को ध्यान में रख कर एक प्रतिनिधि मण्डल विदेश ले जा रहे हैं पर हमें खेलों के लिए और भी बहुत कुछ करना है। जय हिन्द।

उधार वर्ष मनाना है

भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष से कई हजार करोड़ डॉलर उधार ले रखे हैं। इसके अलावा कई और संस्थाएँ और देश हैं जिन्होंने हमें इससे भी ज्यादा जबरदस्ती उधार दे रखा है। सोचता हूँ हमारे विकास का एक मात्र रास्ता है उधार। मेरी तो यह राय है कि दुनिया में हर व्यक्ति की समस्याओं का एक मात्र हल है उधार। इसलिए मैं राष्ट्रसंघ को भी चिट्ठी लिख रहा हूँ कि आज के जमाने में एक आदमी का पेट भरना मुश्किल है और हमारे देश में सत्तर करोड़ लोग जुगाली करते हैं। देश उधार ले लेकर विकास कर रहा है और असल में गरीब होता जा रहा है। आप से क्या छुपाऊँ? भगवान भरोसे सरकार चलती है और राम भरोसे देश चलता है। देश की बात करके कोयले की दलाली में काले हाथ नहीं करूँगा। दुनिया में ऐसे सत्तर-अस्सी देश हैं जो जैसे-तैसे वक्त काटते हैं। आपने एक साल महिला वर्ष मनाया, एक साल बाल वर्ष मनाया, विकलांग वर्ष मनाया। उन सबकी ओर से मेरी अर्ज है कि क्यों न अगला वर्ष 'उधार वर्ष' मनाएँ।

वैसे उधारी तो हमेशा से चलती रही है, जब से चाँद, सूरज और धरती हैं तब से उधारी है और तब तक रहेगी भी। पर, जब सारा विश्व व्यापक रूप से उधार वर्ष मनाएगा तो कुछ और ही मजे रहेंगे। हमें याद है महिला वर्ष में महिलाओं के कल्याण कार्य हुए। बाल वर्ष में बालकों की ऋद्धि-सिद्धि हुई। दो वर्ष मनाए तो परिवार भरा-पूरा हो गया। इस परिवार

का पेट भरना है अब। आप उधार वर्ष मनाने की बात करोगे तो सबकी दाल-रोटी निकल जाएगी। इसकी टोपी उसके सिर करते-करते कितनी ही सरकारें गुलाटें खा गईं, नए नोट फिर काले हो गए। विश्व बैंक से मुफ्त में पैसा मिलेगा तो ठप्पे से जीएँगे और आपकी जय बोलेंगे। भारतीय संस्कृति है हमारी। सच कहता हूँ, जिसकी खाएँगे उसकी बजाएँगे भी।

हमें देव ऋण, ऋषि ऋण और पितृ ऋण पैदा होते ही मिल जाते हैं। फिर भी भारत में सत्तर प्रतिशत लोग गरीब हैं। सारी दुनिया की यही हालत है। एक गरीब ढूँढो तो हजार मिलते हैं। इन सब गरीबों की एक ही समस्या है, पैसा और सिर्फ नकद पैसा। सब लोगों को जी भर कर पैसा उधार मिल जाए तो दुनिया की तकदीर बदल जाए।

उधार वर्ष का मुख्य उद्देश्य तमाम जनता को उधार दिलाना हो। उधार वर्ष की सफलता के लिए सभी सरकारें, बैंकें और खजाने मुक्त हस्त और उदार मन से धन उधार बाँटें। जो उधार नहीं ले उन्हें जबरदस्ती उधार दें और रिजर्व बैंक के साथ-साथ विश्व बैंक के सारे पैसे को बराबर कर दें। यह पैसा आम जरूरतों को पूरी करने के लिए भी हो और मौज-मस्ती का जीवन स्तर बनाने के लिए भी। उधार वर्ष के अन्तर्गत मोहल्ले-मोहल्ले में कार्यक्रम हों। लोग, सेठों और सरकारी बैंकों से उधार लाएँ। सरकार, रिजर्व बैंक से उधार वर्ष में उधार बाँटने के लिए ओवर ड्राफ्ट ले। ऋण पूर्ति के लिए कोई नेता झोला लेकर विदेश जाए। लोग सरकारी पैसे को हाजमा-हजम चूर्ण समझ गटाक कर जाएँगे। उधार ले लेकर गरीब लोग अमीर हो जाएँगे। तब दुनिया में न गरीब रहेगा और न कोई अमीर। सब एक से होंगे, उधारिए। समाजवाद आ जाएगा।

उधार वर्ष में उधार का काम राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर तो होगा ही ग्रामीण, शहरी, जिला और प्रादेशिक स्तर पर भी इसके लिए समितियाँ बनेगी। ये समितियाँ उधार माँगेंगी और परम्परागत रूप से पैसा साफ कर देंगी।

अन्तर्राष्ट्रीय उधार वर्ष की सफलता के लिए सब लोगों को बिना कूपन या आधार कार्ड के उधार देना पड़ेगा। चाहे किताबी अर्थशास्त्री कहें कि इससे फुगावा बढ़ेगा, कीमतें बढ़ेंगी और रुपए की कीमत घटेगी पर मेरा मानना है कि इससे आम जनता को फायदा ही होगा। पैसा ही पैसा मिलेगा। वैसे भी रुपये की क्या औकात रह गई? चाय-पान में पाँच रुपये धूँ हो जाते हैं। विश्व बैंक ने पिछड़े देशों के विकास के लिए पैसा बाँटा पर वांछित प्रगति नहीं हुई। रफ्तार की दर कम की कम रही। कागज पर भी प्रगति न बढ़े तो सफेद हाथी जैसे अफसर किस काम के लिए हैं। मेरी मानो तो आर्थिक रफ्तार बढ़ाने के लिए आप सरकार की उंगली छोड़ दो। विश्व बैंक पैसा सरकार को देती है। सरकार अपने गरीब और भूखे-प्यासे वेतनजीवी कर्मचारियों के माध्यम से पैसा जनता में भेजती है। कर्मचारीगण भी अपने ही लोग हैं। वे भी जनता हैं। दिल्ली से सौ मीटर कपड़े का थान चले तो झाबुआ के आदिवासी तक पहुँचते-पहुँचते लंगोटी रह जाता है। इसलिए आप सीधे जनता को उधार दो। इतना उधार दो कि लोग गच्च हो जाएँ, सात-सात पीढ़ियों तक।

उधार वर्ष की सफलता के लिए हमें पुराने नारों में संशोधन करने होंगे। 'उधार मोहब्बत की कैंची है' नारे को संशोधित कर उधार मोहब्बत की जड़ है' बना दें। 'आज नकद कल उधार' को 'आज उधार कल नकद' कर दें। 'उधार माँग कर हमें शर्मिन्दा न करें' और 'कृपया उधार न माँगें' जैसी तख्तियों को बदल कर लिख दें 'कृपया उधार माँगें'। भरपूर उधार मिलेगा तो कोई विदेश नहीं जाएगा। ब्रेन-ड्रेन की समस्या नहीं रहेगी। कहा है- झाँसी गले की फाँसी, दतिया गले का हार। ललितपुर ना छोड़िए जब तक मिले उधार। धन्य है ललितपुर वाले। सारा विश्व ललितपुर हो जाएगा तो किसी को तकलीफ नहीं उठानी पड़ेगी।

ऋषि चार्वाक ने कहा है- 'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्' इसलिए घी पीने के लिए भी सभी को उधार दिलवाओ। उधारी भारत का राष्ट्रीय चरित्र

है। इसलिए उधार वर्ष का प्रतीक चिन्ह भारतीय होगा। हाथ में उल्टी टोपी लिए ऋण माँगते हुए जनसेवक का मुस्कुराता चेहरा। उधार वर्ष विश्व का गरिमामय कार्यक्रम होगा। इसलिए कुछ बातें आपको और बता दूँ। हमारे यहाँ लोग शौक से कहते हैं- 'जिसका लिया उसका दिया नहीं आप का क्या रख लेंगे?' इसलिए आप पैसा वसूलने की दिक्कत तो करना ही मत। सरकारों से कहना कि ऐ सरकारों! उधार वर्ष को यादगार बनाए रखने के लिए कानून पास करो। जिसने भी उधार वर्ष में पैसा लिया है, माफ कर दो। उधारी माफ करने वाली सरकार खुद भी अमन-चैन से जीती है, जनता को भी शान से जीने देती है और अगले चुनाव जीत जाती है।

जा तुझको जमी दुकान मिले

मेरे खास अफसर का तबादला हो गया है। हो क्या गया है उसने ले-देकर करा लिया है। उसके असामयिक तबादले ने मेरी टेबल पर लाभहीन फाइलों का ढेर बढ़ा दिया है। लेनदारियों और देनदारियों का मौखिक हिसाब पा कर मैं दु:खी हूँ, उसमें कोई दम नहीं बचा। मुझे बीच भँवर में छोड़ कर उसका कमाऊ जगह पर जाना खल रहा है।

सवेरे से सारा स्टाफ विदाई समारोह की तैयारी में लगा है। जितने लोग भोजन व्यवस्था में लगे हैं उससे ज्यादा चंदा बटोरने गए हैं। शेष बाबू और अफसर तांबे में घिसे हरि रस का पान कर हँसोड़ हो गए हैं। रमी, फ्लश और किटी का पन्नों पर जमा-उधार चल रहा है। स्टाफ-गायक, मुकेश व रफी की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए ऐसे गीत गा रहे हैं गोया आकाशवाणी वाले राष्ट्रीय शोक मना रहे हों। मेरे जिम्मे साहबी गम्भीरता ओढ़े छुटपुट कमेंट करना ही है। विदा पा रहा अफसर सहकर्मियों से ऐसे गले मिल रहा है- जैसे लग्न पूर्व लड़की अपनी सहेलियों से मिलती है पर कमाऊ अफसर को विदा करने में मेरी स्थिति उस पिता जैसी हो गई है, जो अपने कमाऊ पुत्र का विवाह कर अपने ही पैर पर कुल्हाड़ी मारता है।

आज अफसर पत्नी घर आई थी आशीर्वाद लेने तो उनके युवापन को दृष्टिगत रखते हुए हमने 'तुम एक तुम्हारा एक' का बोध दे दिया था और प्रेरणा के दो सौ रुपये पक्के कर लिए थे। अब यह अफसर जाते हुए

हाथ मिलाएगा तो क्या आशीर्वाद दूँगा? रिटायर होने वाले के लिए लम्बी उम्र और सुखद भविष्य या जहाँ भी रहे वहाँ उन्नति करे जैसी पुरातन कामनाएँ कर उसे झाँसे देना नहीं चाहता था। मैं कोई प्रगतिवादी कामना कर चर्चित होना और लोगों के लिए अनुकरणीय प्रयोग करना चाहता था। इसमें मेरी गौरवमयी साहबी का भविष्य और बुद्धिजीवी होने का भ्रम सुरक्षित था।

आशीर्वाद के विचार ने मुझे अपनी जमा बुद्धि खर्च करने पर उतारू कर दिया। वह थानेदार होता तो उसके लिए अच्छा थाना मांगता। वह तहसीलदार होता तो उसके लिए अच्छी रेवेन्यू तहसील जमती। नगर निगम में माल-विभाग, रेलवे में लोडिंग-अनलोडिंग, न्यायालय में आर. टी. ओ. जैसे विभागों के लिए अपनी बिल और विल पावर अड़ा देता। सिंचाई, लोक निर्माण या विकास प्राधिकरण में होता तो उसके लिए किसी कामना की जरूरत ही नहीं थी, वहाँ तो उसे हर तरफ बहती गंगा मिलती। मैं अपने विभाग में बम्पर स्कोप ढूँढ रहा था पर साप्ताहिक लॉटरी के अंतिम इनाम जैसा उसका स्वरूप था। मेरी दृष्टि में शिक्षा विभाग के दयनीय लेक्चरार के बाजार भाव भी बढ़ गए थे जिनके यहाँ अब भीड़ बढ़ रही थी। अन्ततः मुझे लगा हमारा विभाग रंगरूट विभाग है। जिसका फर्नीचर तक कचरे में तब्दील हो गया है, बस जनता में हमारी छवि डाक विभाग के मुकाबले अच्छी है।

दोपहर शाम में बदलती जा रही थी। इधर-उधर से स्टाफ वृन्द आ गए थे। लड्डू-बाफले और पुलाव भोग के थाल में रखे जा रहे थे। मैं एकाकी, संबंधों की पीड़ा भोग रहा था। स्टाफ-बॉस संबंध भी सास-बहू जैसे होते हैं, सिर्फ दहेज और जिंदा-जलाने का कार्यक्रम नहीं होता। स्टाफ निबाह रहा था और मैं भी। ऐसे में घोषणा हुई और शिक्षा-विभाग की टाट-पट्टियों पर पसर कर हम पत्तल-दोनों की साज-सज्जा देखने लगे।

जाने वाले अफसर मेरे पास बैठ कर हमें शोक-संतप्त बनाने लगे थे। यह महत्त्वपूर्ण अध्याय यथाशीघ्र हार्दिक-नाटक में बदल गया। जिन्होंने

सालों पहले फूल-मालाएँ अपनी पत्नी के गले में डाली थीं उनका पूर्वाभ्यास काम आ रहा था। वे अफसर को माल्यार्पण कर रहे थे और फोटोग्राफर को देख रहे थे। मितव्ययता के नाम पर भी वे फूल-मालाएँ ही अर्पित कर रहे थे क्योंकि लिफाफे में नोट देने का काम तो रोजमर्रा की चीज थी। धुआँधार भाषणबाजी हो रही थी। वक्ता कह रहे थे- नौकरी का गुण ही है खो-खो। फिर भी, बिछुड़ने का दु:ख है। दु:ख कम है क्योंकि अफसर प्रमोशन पर जा रहे हैं। (हमें दु:ख तब नहीं होता जब कोई सस्पैंड हो जाता है।) अब आयोजकों ने मुझे भी गला साफ करने का सुअवसर दिया है। मैं क्या कहूँ सिवा इसके कि- बाबुल की दुआएँ लेता जा, जा तुझको जमी दुकान मिले।

टेलीफोन लीला

(मोबाइल फोन के पहले हमारी दुनिया)

जब हमारे यहाँ टेलीफोन लगा तो लोगों की भीड़ लग गई। हमने अखबार में विज्ञापन छपवा कर हमारे फोन नम्बर की लोगों को सूचना दी। साथ ही, दिन-रात मेहनत करके हमने परिचितों के फोन नम्बर की नई डायरी बनाई और उन्हें अपने फोन के बारे में बताया। एक मित्र जब हमारा टेलीफोन देखने आए तो उन्होंने कहा इस जमाने में लोगों को कुत्ता और टेलीफोन पालने का शौक चर्राने लगा है। वह कहने लगे- कुत्ता मालिक के लिए भौंकता है भौं-भौं और टेलीफोन मालिक से भौंकवाता है हलो-हलो! हमें लगा कि दोस्त को हमारे यहाँ टेलीफोन लग जाने से ईर्ष्या हो रही है, इसीलिए वह ऐसा कह रहा है पर कुछ दिनों बाद हमें लगने लगा कि उस मित्र की बात बिल्कुल सही थी। कुत्ते के भौंकने से घर के लोग ही सतर्क होते थे पर टेलीफोन पर चिल्लाने से अब पास-पड़ोसी भी सतर्क होने लगे और दीवारों पर कान लगा कर बातचीत सुनने लगे। टेलीफोन की इस अदा के कारण हम पड़ोसियों और ऑपरेटरों से लगाकर एलेग्जेंडर ग्राहम बेल तक को जानने लग गए। ग्राहम बेल को इसलिए कि उन्होंने टेलीफोन का आविष्कार किया था और ऑपरेटरों को इसलिए कि उन्होंने सारी टेलीफोन प्रणाली का बंटाढार कर रखा है।

हमने बड़ी चर्चा सुनी थी कि एस.टी.डी. में एक कोड नम्बर

डायल करते ही बम्बई मिल जाता है पर जब भी मैंने कोशिश की कोड नम्बर ही खाली नहीं मिला। कभी चिढ़ कर ट्रंक काल बुक कराने के लिए एक्सचेंज पर डायल किया तो उनकी भी वही स्थिति मिली। वैसे भी मिन्नतों के बाद हमें डायल टोन नसीब होती थी और डायल करने पर पता लगता था कि नम्बर कहीं और लग गया है। रांग नंबर लगने पर शरीफ लोग जरूर चोगा पटक देते थे पर कुछ उदार लोगों ने हमारे यहाँ मृत मवेशियों को ले जाने वाली नगर निगम की गाड़ी भिजवा दी थी। शायद ऐसा इसलिए हो रहा था कि हमारे टेलीफोन की हालत आधे तीतर आधे बटेर जैसी हो गई थी। मैंने सोचा टेलीफोन विभाग वालों को कुछ समझाऊँ। इस उद्देश्य से एक बार मैं उनके कार्यालय में पहुँचा। तमाम अधिकारियों को स्थिति समझाई, पर वहाँ किसे समझाता? वहाँ देख कर लगा तैंतीस करोड़ देवताओं में से अधिकांश इसी विभाग में विराजित हो गए हैं और समय-असमय अपनी देवतागिरी बताने से बाज नहीं आते।

एक दिन शाम को मैं एक होटल में खाना खाने गया। वहाँ कुछ लोग सट्टा लिख रहे थे। शाम के आठ बजते ही वहाँ रखा टेलीफोन टनटनाने लगा। मुझे लगा इस टेलीफोन में महाकाली प्रवेश कर गई हैं। वहाँ की साधारण कॉल लाइटनिंग कॉल जैसी लगी। सट्टे के खाईवालों को टेलीफोन विभाग ने जो प्राथमिकता दे रखी है, उसे देख कर मुझे अपने प्रथम श्रेणी के अधिकारी पद से ग्लानि होने लगी। मुझे लगा ये टेलीफोनकर्मी डाक-तार विभाग की सौतेली संतान हैं। इस गम में ये लोग न जाने कौन-सी गोली खाते हैं कि लाइनें सारे दिन एंगेज रहती हैं। कभी किसी को कुछ कह दो तो टेलीफोन चार-छः दिन के लिए खिलौना बन जाता है। टेलीफोन काटकर वे सोचते हैं अब न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी।

ऐसे ही हालत में एक दिन परेशान हो कर जब मैंने एक्सचेंज पर धावा बोला तो ऑपरेटर ने कहा- हमें आपकी घंटी ही नहीं आती, कहीं लाइन खराब होगी या आपके यहाँ ही लाइन कुछ खराब होगी या आपके

यहाँ ही कुछ गड़बड़ होगी। मैंने विनम्र हो कर गुप्त संदेश सहित लिफाफा खिसका दिया और कहा सर, इसे ठीक करवा दीजिए। उसने संदेश ग्रहण कर मुझे शिकायत करने को कहा। कुछ घंटों बाद हमारे टेलीफोन में टेलीफोन-संगीत बजने लगा। ऑपरेटर से इस प्रत्यक्ष मुलाकात ने मुझे कई अप्रत्यक्ष लाभ दिलाए। अब मैं बम्बई सीधे बात कर सकता था और ऐसी कॉलें हमारे बिल में भी जगह नहीं पाती थीं।

टेलीफोन ने हमें नित नए अनुभव दिए। श्रीमती जी आधे-एक घंटे का वार्तालाप तीन मिनट में करने लगी थीं। कभी-कभी जब वे एक जगह डायल करती थीं तो दो-तीन लाइनें जुड़ जाती थीं और वे सब से एक साथ बात करने का सुख प्राप्त कर लेती थीं। रांग नंबर लगाने वालों ने दोपहर में उनका जीना हराम कर रखा था। एक दिन मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ। मैंने नंबर डायल किया तो एक साथ तीन जगहों से आवाजें आने लगीं। हम चार लोगों में वार्तालाप चलने लगा। मैंने अवांछित नंबर वाले से डपट कर कहा- मैं टेलीफोन एक्सचेंज से बोल रहा हूँ, आप अपना रिसीवर रख दीजिए, आपकी कॉल आ रही है। इस तरह सामने वाले से फोन रखवा कर मैं अपनी पार्टी से बात करने में सफल होने लगा।

टेलीफोन के बारे में जब एक दिन हम सभी पीड़ित लोग चर्चा कर रहे थे तो एक मित्र ने टेलीफोन पर न सुनाई देने के बारे में एक वाकया बताया। उसने कहा एक सज्जन दूसरे सज्जन से टेलीफोन पर बात कर रहे थे। उन्होंने कहा- 'भाई, एक हजार रुपए भेज दो।' दूसरे सज्जन ने उधर से कहा- 'बिल्कुल नहीं सुनाई दे रहा है।' पहले सज्जन चीख-चीख कर थक गए तो ऑपरेटर से नहीं रहा गया। उसने दूसरे सज्जन से कहा- आप झूठ बोल रहे हैं, आपको सब सुनाई दे रहा है। दूसरे सज्जन ने ऑपरेटर से कहा- यदि आपको सुनाई दे रहा है तो आप दे दीजिए एक हजार रुपए।

संयोग से उसी दिन मैंने मद्रास कॉल लगाया था। जब मेरे मित्र ने उधर से बोलना शुरू किया तो मुझे उसकी आवाज सुनाई देने लगी पर उस

बेचारे को हकीकत में मेरी आवाज नहीं सुनाई दे रही थी। ऑपरेटर महाशय जी तटस्थ होकर यह संवाद सुन रहे थे, बीच-बीच में हमें हिदायतें देने लगे- 'जोर से बोलो'। मैं जोर से बोलते-बोलते चीखने लगा था। ऑपरेटर ने जब फिर से जोर से बोलने को कहा तब मैंने विनम्र हो कर कहा- यदि मैं इतनी ही जोर से चिल्ला सकता होता तो टेलीफोन करने की जरूरत क्या थी? मैं वैसे ही बात कर लेता चिल्ला-चिल्ला कर।

बस उस दिन से टेलीफोन निठल्ला पड़ा है पर बिल नियमित आ रहा है, मुझे लगता है अब मेरे फोन से भूत-प्रेत बात करने लग गए हैं। मैं हमारे टेलीफोन की झाड़-फूँक करवाने के लिए ओझाओं को ढूँढ रहा हूँ जो हमारे टेलीफोन से भूत भगा सकें। आपको ऐसे किसी साधु-महात्मा या फकीर का पता हो तो मुझे यथाशीघ्र लिखना अन्यथा टेलीफोन की शवयात्रा निकालने का महाआयोजन हमारे शहर में होने वाला है।

चलो साफा भी मिलेगा

मुझे लगता है किसान खुद टिड्डी दल बनने लगे हैं। पहले झुंड के झुंड चले थे तो नेताओं के खेत उजाड़ गए थे, अब अपने ही खेत खा रहे हैं। किसान आन्दोलन से राजनीतिज्ञों के चरागाहों को जबर्दस्त खतरा पैदा हो गया था। उन्हें भय था कि किसानों को यदि वे आश्वासन की जलेबी नहीं खिला पाए तो किसान उन्हें साबुत हजम कर जाएँगे। इसलिए बड़े भैया और छुट भैया, दोनों किस्म के नेता लोग मनाने लगे थे, कहने लगे थे– "हे हमारे भाग्य विधाता, यह बजट–सत्र चुपचाप निकलवा दे। किसान के फटे कपड़ों पर जैसे थेगले हैं वैसे हमने भारतवासियों पर टैक्स लगा रखे हैं। अब कहाँ लगाएँगे नए टैक्स? हमने गरीबी हटाने का वादा किया है। बस, तब तक रुक जा। गरीबों को बुलडोजर से हटा देने दे। फिर देखना आलू बादाम के भाव बिकेंगे और प्याज अंजीर के भाव।"

किसान थे कि मान ही नहीं रहे थे। नेताओं ने स्वार्थ की दवाई छिटकनी शुरू की, इधर गुट बनवाया उधर घर तुड़वाया। बेचारे किसान राजनीति के नशे में बीज की जगह आन्दोलन बोने लगे और खेती को देश की तरह लावारिस छोड़ दिया। मैं भी मटरगश्ती मारने वालों की तरह किसानों का हमदर्द हूँ, इसलिए एक किसान से मिला। किसान का नाम है सेवा, पिता पूँजा। वह जाति बताने में डरता है, क्योंकि उसकी जाति सुनकर लोग उसके भाग्य से ईर्ष्या करने लगते हैं। उसके पास दो बीघा जमीन है

और लाख रुपये का कर्जा है।

पहली बार मैं सेवा से छः महीने पहले मिला था, तब वह खेत में व्यस्त था। घर के लोग वहीं काम पर लगे थे, फटे-पुराने कपड़ों और चिथड़ों में। दो महीने पहले मिला तो सेवा के ठाठ ही अलग थे। गेहूँ और चने से ज्यादा उसे लांग मार्च की चिन्ता थी। तब वह नागपुर जा रहा था। तब उसे सिंचाई की परवाह नहीं थी। उसे विधानसभा अधिवेशन खत्म होने से पहले पहुँचना था। निर्णय टालने में माहिर सरकार ने विधानसभा का सत्र छोटा कर दिया था। मैंने उससे पूछा- "क्यों जा रहे हो नागपुर?''

"नागपुर, दिंडी में जाना है, रैली करना है। बहुत बड़ा शहर है नागपुर, घूम-फिर लेंगे। ताऊ से मिलना भी हो जाएगा। तुम भी चलो। बस वहाँ पुलिस गिरफ्तार करेगी और पाँच-दस किलोमीटर दूर ले जाकर छोड़ देगी।"

मुझे लगा किसानों के भोलेपन को राजनीति डस गई है। कथित बुद्धिजीवियों की तरह मैं उसे टुकर-टुकर देखता रहा था। अभी सेवा का खेत देखकर मुझे रहीम याद आने लगे। नेता लोगों ने किसानों पर भी कृपा-दृष्टि कर दी। 'राम नाम की लूट है, लूट सके तो लूट' के सिद्धान्त में 'किसान-किसान' रट कर नेता लोग थोथी सहानुभूति लूटने में लगे थे। खेत में फसल नहीं उगी थी। सेवा कहीं बाहर जाने की तैयारी में लगा था। मैंने सेवा से पूछा- "क्यों भाई, न गेहूँ न चने? कुछ नहीं उगाया इस बार? कहाँ चले?"

उसके चेहरे पर कुटिल मुस्कुराहट तैर आई। उसने कहा- "गोली मारो यार खेत-वेत को। हम तो आन्दोलन कर रहे हैं। हम मैसूर हो आए, हैदराबाद हो आए, अब फिर जा रहे हैं। रैली निकालना है। ट्रकों, बसों और रेलों के रेले बहाना है। मालूम है कोई बीस लाख आदमियों का जुलूस निकलेगा। हम आदमियों की नदी बहा देंगे तथा बहानेलाल की दुकान जमा देंगे। बहानेलाल खुद किसान है, किसानों के माई-बाप हैं। सब कर्जा माफ

कराने वाले हैं।" उसने हाथ से दिशा विस्तार बताते हुए कहा- "इतने बड़े-बड़े चार फॉर्म हैं उनके, एक डेरी है, मुर्गीखाना भी है, सब कुछ है। दिन में रात है और रात में भगवान की दया है।"

मुझमें अकल का कीड़ा है, कभी-कभी सलवल करता है, कभी-कभी काटता है। सेवा की मुँह-फटी सुनकर अकल का कीड़ा उत्तेजित हो गया। इसलिए मैंने पूछा- "सेवा, रैली निकालने से क्या होगा?''

"अनाज के अच्छे भाव आएँगे। हमें हमारी मेहनत का पूरा मुआवजा मिलेगा" उसने कहा। मैंने पूछा- "तुम्हारे खेत में तो अनाज है ही नहीं, तुम्हें क्या मिलेगा? हाँ, बहानेलाल के पास बहुत अनाज है उसे अच्छा पैसा मिलेगा। बहानेलाल के पास तो खेती के सिवा भी बहुत कुछ है। तुम किसान लोग तो उसकी राजनीति की दुकान चला रहे हो, बस। बताओ तुम्हारे जैसे कितने छोटे किसानों को फायदा मिलने वाला है?''

सेवा नाराज हो गया उसकी मुट्ठियाँ भींच गईं और हाथ हवा में लहरा गए। कहने लगा- "तुम फालतूलाल के आदमी हो। फालतूलाल में कोई दम नहीं है। न किसी का काम करवा सकता है न इंतजाम। हमें तो बहानेलाल ने सही रास्ता बताया। हम अपने अधिकारों के लिए लड़ रहे हैं।" वह अपने नेता बहानेलाल की जय का नारा लगाकर पुनः सामान्य हो गया। मुझे रुआँसा देख कर बोला- "तुम भी चलो। इस बार तीन बस भर कर जा रही हैं। कितना बड़ा इंतजाम किया है, खाओ, पीओ और गचागच रहो। चलो, अत्ता-भत्ता और रुपए के साथ एक साफा भी मिलेगा।"

मैं न किसान बन सका न नेता, आदमी ही रहा। बस दु:ख सालता रहा। राजनीति जैसी छूत की संक्रामक बीमारी सेवा को लग गई। सेवा जैसे लाखों लोग उसी चपेट में आ गए। राजनीतिज्ञ कह रहे हैं इससे प्रजातंत्र मजबूत हो गया है। शायद, उनके लिए प्रजातंत्र का अर्थ सिर्फ बहानेलाल ही है, सेवा नहीं।

ब्रीफकेस प्रसंग

मैं दफ्तर में नया-नया हूँ और दफ्तर की संस्कृति समझ रहा हूँ। जब कभी, जहाँ कहीं ब्रीफकेस देखता हूँ, भक्त मुद्रा में मैं श्रद्धा से भर जाता हूँ। ब्रीफकेस का स्वरूप कभी मुझे जादुई लगता है तो कभी दैविक।

अस्थाना जी एक अदने-से अधिकारी हैं, पर जब वे अपना ब्रीफकेस झुलाते हुए दफ्तर में प्रवेश करते हैं तो लगता है जैसे वित्त मंत्री बजट भाषण देने लोकसभा में प्रवेश कर रहे हों। द्वार पर आते ही द्वारपाल अदब से उनका ब्रीफकेस उठा लेता है। अस्थाना जी प्रवेश करते ही प्रसन्नचित्त हो जाते हैं। पहले जब अस्थाना जी ब्रीफकेस धारी नहीं थे लोग उन्हें गाँठते नहीं थे। बाबू उन्हें अपना जूनियर समझते थे और चपरासी यार। ब्रीफकेस ने उन्हें गरिमा दी है और रोब दिया है या यों कहिए कि उन्हें अपनी खोई जवानी वापस मिल गई है। जैसे गंडों और तावीजों से मरियल आदमी पहलवान दिखने लगता है, ब्रीफकेस लल्लू अफसर को सक्षम अफसर बना देता है।

मैंने ब्रीफकेस की महिमा बखानते हुए कई विज्ञापन पढ़े हैं, कई विज्ञापन देखे हैं कि एक चमचमाता ब्रीफकेस सड़क पर पड़ा है और कार का एक पहिया उसके ऊपर चढ़ गया है। फिर भी, ब्रीफकेस साबुत है, कहीं कोई क्रेक नहीं, टूट-फूट नहीं। इस चित्र को देखकर दो तथ्य मेरे दिमाग में आते हैं। पहला यह कि ब्रीफकेस नाशवान नहीं है, अमर है और दूसरा यह

कि ब्रीफकेस और कार में घरेलू संबंध है, दोनों एक ही संस्कृति के संवाहक हैं। ब्रीफकेस और कार के मधुर संबंधों को लेकर मुझे पंचतंत्र की बंदर और जामुन प्रेमी मगर की कथा याद आ रही है। ऐसे ही एक अफसर और ठेकेदार मित्र थे। ठेकेदार अफसर के ऑफिस रोज आता था और अफसर उसे धन लाभ के मीठे-मीठे जामुन देता था। एक दिन ठेकेदारनी ने ठेकेदार से कहा ऐसे अफसर को आपको घर लाना चाहिए जिसका दिल इतना दरिया है। मैं उसका दिलोदिमाग चखूँगी। ठेकेदार ने ठेकेदारनी को बहुत समझाया पर वह नहीं मानी। अन्ततोगत्वा एक दिन ठेकेदार ने अफसर से कहा सा'ब आज हमारे घर चलो। अफसर फटाफट उसकी कार में बैठ गए। मार्ग में उन्होंने ठेकेदार से पूछा- 'आज क्या जलसा है? ठेकेदार ने कहा- सा'ब ठेकेदारनी आपसे बहुत खुश है। वह कह रही थी जो अफसर रोज इतना धन लाभ करा सकता है उसका दिल कितना दरिया होगा, दिमाग कितना तेज।

अफसर ने कहा- 'ठेकेदार भाई, गाड़ी मोड़ो, ऑफिस चलो। ऐसी बात थी तो पहले बताना चाहिए थी। मेरा ब्रीफकेस ऑफिस में रखा है, मैं उसी में रखता हूँ अपना दिलोदिमाग। आजकल जमाना बहुत खराब है। हर कहीं तो ब्रीफकेस ले कर जा नहीं सकते। अफसर और ठेकेदार पुनः ऑफिस पहुँचे। अफसर ने ब्रीफकेस साथ लिया और ठेकेदारनी से ब्रीफकेस खोल कर मिला। ठेकेदारनी ने उसका खुला दिलोदिमाग चखा और उसके बाद उन सबके दिन फिर गए।

कथा तो कथा है, यथार्थ का प्रतिबिम्ब! यह कथा ब्रीफकेस का जो सहज कथा तत्व सामने लाती है, वह यह कि अफसर लोग अपना दिलोदिमाग ब्रीफकेस में रखते हैं। मैंने कई लोगों को ब्रीफकेस और उसी अदा में गर्दन लटकाए घर से ऑफिस और ऑफिस से घर आते-जाते देखा है। यदि ब्रीफकेस नहीं होता तो ये बेचारे दिमाग कैसे लाते-ले जाते?

यह कथा तत्व जान कर मेरी इच्छा होने लगी कि मैं भी अस्थाना

जी का दिलोदिमाग चखूँ, जो अल्प समय में बड़े साहब के खास पूत बन गए हैं। एक दिन जैसे ही उन्होंने आसन ग्रहण किया मैं उनकी कपाल–क्रिया देखने लगा। उन्होंने ब्रीफकेस खोला, नेपकीन निकाला और स्टाफ क्लब की मैगजीन अन्दर ही रहने दी। तद्‌न्तर, उन्होंने चारों ओर नजरें दौड़ाई और आश्वस्त हो कर पसीना पोंछने लगे। मुझे देख कर कहने लगे– बहुत बढ़ गया है पेपर वर्क और ब्रीफकेस उठा कर मुझसे दूर रख दिया। पर मैं रिक्त ब्रीफकेस देख चुका था। मुझे कुतूहल हुआ कि उनका दिमाग उसमें भी नहीं था और न ही उसमें भूसा ही भरा था। बावजूद इस सबके बॉस उनकी इज्जत करते थे। उदाहरण देते कि काम तो अस्थाना जी करते हैं, कागजात घर ले जाते हैं और निबटाते हैं। ब्रीफकेस की 'हिप्टोनाइज' कर सकने की इस अद्‌भुत क्षमता ने मुझे चमत्कृत कर रखा है। जो कुछ नहीं करते वे सब कुछ करते दिखते हैं और जो करते हैं वे कुछ भी करते नहीं दिखते। इस कारण ब्रीफकेस में मुझे रहस्यवाद की प्रतीति होती है, जो है और जो नहीं भी है ऐसा गुत्थमगुत्था दर्शन मुझे ब्रीफकेस में मिलता है।

ब्रीफकेस के इस दैविक स्वरूप के कारण मैं बॉस को भी देवता का अवतार मानता हूँ। वे ब्रीफकेस उठाए जब ऑफिस की सीढ़ियाँ चढ़ते हैं तो ब्रीफकेस में कागज की मात्रा और इसके भार के मारे दोहरे हो जाते हैं। ब्रीफकेस उनसे उठता नहीं, फिर भी वे अपना धर्म निबाहते हैं। उनके लिए पत्नी और ब्रीफकेस एक जैसे हैं। जब उनकी पत्नी का जिक्र होता है वे ब्रीफकेस खोल लेते हैं और जब वे ब्रीफकेस में गोताखोरी कर कागजात निकालते होते हैं उन्हें पत्नी की फरमाइशों की याद आ जाती है। कुछ भी हो बॉस ब्रीफकेस को ज्यादा महत्व देते हैं। ऐसा इसलिए है कि ब्रीफकेस पत्नी की तरह वाचाल नहीं है और उसमें मामले इतने गोपनीय रहते हैं जितने अन्यत्र संभव नहीं है।

दफ्तर में एक और अफसर है जो खुद को बहुत जिम्मेदार समझते हैं। इसलिए वे ब्रीफकेस से संतुष्ट नहीं है, वे सूटकेस लाते हैं। ब्रीफकेस में

नेपकीन, पत्रिका और एक–दो फोल्डर ही समा सकते हैं, पर उनके सूटकेस में पूरा इंतजाम रहता है। सूट, टॉवेल, चादर, अंग्रेजी उपन्यास आदि उसमें भरे रहते हैं। वह घर से दौरे पर जाने की तैयारी कर के ही आते हैं। वह जहाँ भी जाते हैं सूटकेस साथ ले जाते हैं और अपने भ्रमण–अभ्रमण सब को टूर डायरी में अंकित कर लेते हैं। वे दु:खी है कि ब्रीफकेस–रसिकों ने उनकी इमेज भत्ताभोजी बना दी है और ब्रीफकेस रसिकों के आलोचक–मन उनमें रस लेने लग गए हैं।

कहावत है 'नया मुल्ला जोर से नमाज पढ़ता है।' कुछ ऐसी ही स्थिति मेरी है। मैं ऊहापोह में हूँ कि योग्य और जिम्मेदार अफसर बनने के लिए मैं ब्रीफकेस लूँ, सूटकेस लूँ या बार–बार तबादलों की संभावना में होलडॉल ले कर एक नया प्रयोग शुरू करूँ। इस दुविधा में मैं बॉस के चेम्बर में ज्ञान प्राप्त करने के लिए पहुँच जाता हूँ, समस्या रखता हूँ और उपकृत हो जाता हूँ। मेरे चिंतन में एक दोहा उभरने लगता है–

ब्रीफ, सूट दोउ पड़े, काके लेऊँ उठाय।
बलिहारी गुरू बॉस की, ब्रीफकेस दियो बताय।।

कंडक्टर-लिपि

मैं लिखने की लीपापोती लिपि से बेहद प्रभावित हूँ, जिसका विकास बसों के कंडक्टरों ने किया है। इस लिपि में मुझे हमारी आदिम सभ्यता के विकास की झलक मिलती है। लीपापोती लिपि अर्थात कंडक्टर लिपि ब्राह्मी, उर्दू, हिब्रू, चीनी और देवनागरी लिपिओं की विशिष्टताओं का निचोड़ है, अंगूर, द्राक्ष और सेबफल के निचोड़ जैसा। इसलिए कभी कंडक्टर लिपि, चित्रकार हुसैन का स्कैच नजर आती है। कभी राग भीम पलासी का रेखीय चित्रण तो कभी कराटेकारों की फुदकती टाँगें। कंडक्टर लिपि का अक्षर विन्यास करते समय मैंने हस्तलेख विशेषज्ञों के दिमाग को गदबदाते देखा है। इसमें पहला अक्षर हिन्दी का, दूसरा मलयालम का और अंतिम असमिया जैसा होता है। बीच के अक्षरों की बनावट विवाद का विषय है। कुछ विद्वानों का मानना है कि बीच में अक्षर होते ही नहीं हैं। पर मुझे लगता है बीच के अक्षर अंग्रेजी के होते हैं। अंग्रेजी लिखते हुए जो फ्लो बनता है, वह टिकटों से झाँकने लगता है। कंडक्टरों की लिपि मुझे विश्व लिपि लगती है। इसके आंतरिक सौंदर्य ने मेरे रोम-रोम को आह्लादित किया है और इसके बाह्य सौन्दर्य ने ऑडीटरों को।

कंडक्टर लिपि के विवेचन के लिए मैंने इसका विस्तृत अध्ययन किया। जब मैं इस महान उद्देश्य के लिए कंडक्टरों से टिकट माँगता तो उनकी नाक-भौं सिकुड़ जाती। वे समझते मैं यात्रा-भत्ते का कपोल-कल्पित

बिल बनाकर धन–कुबेर हो जाना चाहता हूँ। अन्य सहयात्रियों से जब टिकटें संग्रह करता तो वे मुझे सरकारी जमाई समझ ससुरालनुमा ताने मारने लगते। निरन्तर ऐसा करते रहने पर कुछ कंडक्टर मुझे सी.बी.आई. के आदमी के रूप में पहचानने लगे और मेरी उपस्थिति में यात्रियों को शेष बचे पैसे अपरम्परागत रूप से वापस करने लगे। खैर, भारत भ्रमण के बाद कथित दिमाग लगाकर मैंने इस संबंध में कुछ तथ्य खोजे जो आपकी जानकारी के लिए प्रस्तुत हैं।

मैंने पाया कि कंडक्टर लिपि समय के साथ फर्राटे से लिखी जाने वाली लिपि है। टिकट–चेकरों को आया देख कंडक्टर जिस तेजी से टिकट लिपिबद्ध करते हैं तो लगता है पेन डिस्को कर रहा है। सुपर फास्ट बसों में इस लिपि में चाल का लोच सौ किलोमीटर प्रति घंटा रहता है तथा धुँआ उत्पादक ढचरों में यह लिपि बीस किलोमीटर प्रति घंटे की रफ्तार का झटका खाती है। चलती गाड़ी में जब कंडक्टर लिखता है, तब वह कागजी चिटों को अर्थ देता है, दूरी देता है और जल्दबाज तथा भुलक्कड़ यात्रियों की हजम कर सकने योग्य राशि टिकट के पीछे बट्टे खाते में डाल देता है। तब उसकी उंगलियाँ सोनल मानसिंह के पैरों जैसी लगती हैं। क्रॉसिंग प्रभाव, ब्रेक प्रभाव, भैंस प्रभाव और लोक निर्माण वालों के परसेंट प्रभाव को यह लिपि सशक्त अभिव्यक्ति देती है।

'आप लिखे खुदा बाँचे' का दार्शनिक मुहावरा इस लिपि की सम्पूर्णता को प्रतिष्ठित करता है। इसमें अंक और अक्षर एक जैसे हैं। कंडक्टर लिपि के इस स्वरूप के कारण कंडक्टरों और भत्ताधर्मी कर्मचारियों दोनों को ही असीम फायदे हैं। कंडक्टरों के रिकार्ड में तीस किलोमीटर की यात्रा का टिकट, दमदार कर्मचारी को एक सौ तीस किलोमीटर यात्रा का भुगतान करवा सकता है। इस लिपि पर पूर्ण श्रद्धा कर कंडक्टरगण यात्रियों को एक–दो स्टॉप आगे से एक–दो स्टॉप पीछे के टिकट थमा देते हैं। न्यूटन के गति नियमों और आइंस्टाइन के सापेक्षिता सिद्धान्त से कमा खाने का यह

बढ़िया उदाहरण है। कंडक्टरों के ऐसा करने से ड्रायवर की चाय-बीड़ी, चेकरों के लिए कुछ रुपए और फ्लाइंग स्क्वेड के लिए श्रद्धानिधि निकल आती है। ग्रामीण भारत के आवागमन पर कंडक्टर लिपि का वर्चस्व है। शहरों में साक्षर ज्यादा होते हैं, इसलिए टिकट छपवा लिए हैं। फिर भी, मैं कंडक्टर लिपि का हिमायती हूँ क्योंकि इसकी लोकप्रियता ने आर्थिक, सामाजिक और भौगोलिक दीवारों को तोड़ा है। राज-काज में इस लीपापोती लिपि को राजकीय दर्जा मिलना चाहिए। डॉक्टरों ने तो खैर इसे एक हद तक अपना ही लिया है, अन्य विभाग भी इस पर डोरे डाल रहे हैं। लीपापोती लिपि प्रचलन में आते ही सरकारी विभाग ऑडीटरों के भय से मुक्त हो जाएँगे। ऐसे में सच मानिए, कंडक्टर लिपि में सब कुछ होने लगा तो देश इधर से उधर हो जाएगा और भारत का नक्शा जो चार-छः सदियों में बदल सकता है, चार-छः साल में ही बदल जाएगा। तब मंत्री की एक नोट शीट से सारे याचकों के काम हो जाएँगे और वह सब जायज हो जाएगा जो आज नाजायज है।

नदी लाओ समिति

उनका नाम कुर्सीसिंह है। वे पिछला चुनाव भारी बहुमत से जीते थे। ताजे चुनाव में उन्हें उतने ही अल्पमत मिले। जमानत जब्त हो गई। इधर-उधर की सरकारी समितियों से उनको बेदखल कर दिया गया। उनका सिर तो मुंडा ही मुंडा, ऊपर से ओले भी गिर गए।

कुर्सीसिंहजी की हार का कोई कारण नहीं था। वे इसी योग्य थे। पिछली बार गलती से चुनाव जीत गए थे। इन दिनों वे अकेले चने थे। न भाड़ फोड़ सकते थे, न भड़ास निकाल सकते थे। इसलिए उन्होंने अपने लोगों को बुलाया और हार के कारणों की खोज शुरू की।

मैं पर्यवेक्षक था। मुझे बिहारीलाल पान वाले ने नियुक्त किया था। बिहारीलाल को कुर्सीसिंह से उधारी पटानी थी। खैर मीटिंग शुरू हुई। एक वे थे, दूसरा मैं था। तीसरा कोई नहीं था। हम दो थे और दोनों इस बात से संतुष्ट थे। मैंने सीधे-सीधे पूछा- 'पैसे कब दोगे?' वे रुआँसे हो गए और बोले मैं तो चुनाव हार गया।' "क्यों हार गए?" मैंने उनकी पत्नी-सी तेज आवाज में पूछा। "इस गाँव में नदी नहीं है इसलिए।"

मुझे वे आइंस्टिन लगने लगे। नदी और चुनाव का संबंध मुझे समझ में नहीं आया। मुझे लगा नदी होती तो वे नदी में डूब मरते। उन्हें आत्म हत्या करने पर उतारू देख मैं उदास हो गया, उपराष्ट्रपति की तरह उदास। मैंने सहानुभूतिपूर्वक पूछा- "नदी होती तो क्या करते?"

"नदी होती तो बाढ़ आती। बाढ़ आती तो सारे गाँव में पानी भर जाता। गाँव में पानी भर जाता तो मैं हवाई सर्वेक्षण करता। रिपोर्ट देता। मेरी वाहवाही होती। अखबारों में फोटो छपते। हवाई जहाज से फूड पैकेट गिरते।" मैं चौंक गया उनके दर्शन से। फूड पैकेट मैंने कभी देखे नहीं। सिर्फ फूड इंस्पेक्टर देखा था। फूड इंस्पेक्टर को दुकानदार को खाते देखा था। मुझे भी ग्लानि हुई। काश! फूड पैकेट गिरते और हम उनको खाते। जिन्दगी भर के लिए संस्मरण बन जाता कि हमने फूड पैकेट खाए। मैंने फटी आँखों उन्हें देखा। वे द्रवित हो गए थे। कहने लगे- "कितनी जन हानि होती? कितनी धनराशि मिलती? मैं मृतकों को मुआवजा दिलवाता।" वे और ज्यादा द्रवित हो गए। रोने लगे। "मैं छाती-माथा कूटता ऐसे-ऐसे" कहते हुए वे संजीव कुमार जैसे संजीदा अभिनेता हो गए। कुछ क्षणों बाद उन्होंने कहा 'तब जानती जनता, मैं उनका कितना हमदर्दी हूँ। मैं प्रभावित लोगों को फ्लड लोन दिलवाता। उनके पुनर्वास के लिए झगड़ता। जगह-जगह राहत कार्य खुलवाता। तब जनता कहती मैं उनका सच्चा सेवक हूँ। तब देती जनता मुझे वोट। तब बनता चुनाव लड़ने के लिए फंड।"

कुर्सीसिंहजी के सामने में नत मस्तक हो गया। उनकी दूरदर्शिता ने मुझे नई दृष्टि दी। मैं पर्यवेक्षक था इसलिए विश्लेषण करने लगा। यदि हमारे यहाँ नदी होती तो कुर्सीसिंह देश के जाने-माने नेता होते।

वे खकारे। गला साफ किया और पुनः बोलने लगे- "यदि नदी होती तो आए दिन उसमें कोई गिर जाता। तुम्हारे जैसे बेरोजगार लोग नदी में कूद पड़ते और गिरने वाले को बचा लेते। मैं तुम्हारा नाम राष्ट्रपति को भेजता। तुम्हें राष्ट्रपति पदक मिलता। तुम्हारे चर्चे होते और तुम मुझे वोट दिलवाते।"

मैंने अपनी गर्दन को तीस डिग्री नीची कर स्वीकृति दी। वे प्रोत्साहित हो गए। जोश में आकर बोले- 'नदी होती तो राज्य परिवहन निगम की ठसाठस भरी डिब्बा गाड़ी नदी में छलांग लगा देती। पचास साठ

सवारियों का राम नाम सत् हो जाता। (ड्राइवर और कंडक्टर को यही सत्कर्म करते रहने के लिए भगवान बचा देते।) कितना मुआवजा मिलता? इस रूट पर निगम की सारी गाड़ियाँ नई और अप-टू-डेट होतीं। मुझे परिवहन निगम की प्रबंध समिति का सदस्य बना दिया जाता। बोलो तब मैं कितना पैसा कमा लेता? बोलो, बोलो चुप क्यों हो?"

मुझे लगा मेरी जबान को लकवा मार गया है। सचमुच कुर्सीसिंह के हारने का प्रमुख कारण हमारे यहाँ नदी नहीं होना है। मैंने अपनी सूखी जबान अपने ही मुँह में घुमाई और सारी शक्ति इकट्ठी कर बोला- "हाँ सच है हमारे यहाँ नदी होनी चाहिए।"

वे आश्वस्त हुए। डूबते को तिनके का सहारा मिल गया। उन्होंने कहा- "नदी के लिए हम एक नदी लाओ समिति बनाते हैं। बिहारीलाल पान वाले उसके अध्यक्ष होंगे। मैं उसका महासचिव रहूँगा और तुम कोषाध्यक्ष होंगे।"

मैं गद्‌गद् हो गया। ऐसे लगा जैसे अपोलो-20 का कैप्टन बना दिया गया होऊँ। मैंने कुर्सीसिंह से कहा- "चलो आज की रिपोर्ट बिहारीलाल जी पान वाले को दे दें। मैं उनके द्वारा नियुक्त पर्यवेक्षक था। हमें दुकान पर आता देख वे तेजी से पान लगाने लगे। उन्हें लगा होगा उधारी पटाने का कोई फार्मूला हमने तय किया है। इस संभावना में उन्होंने हमें पान खिलाए। मैंने रिपोर्ट दी। बिहारीलाल बलिहारी-बलिहारी हो गए। उन्होंने सौ रुपये नकद दिए और कहा- "नदी लाओ समिति के लेटरहेड छपा लो।"

महँगाईबाला का स्वयंवर

मैं भारत के लालकिला मैदान से धर्मपाल महेन्द्र जैन बोल रहा हूँ। हल्की-फुल्की धूप निकल आई है। सड़कों पर वाहनों का शोर बढ़ रहा है। इक्का-दुक्का आदमी चेहरे लटकाए काम की तलाश में जा रहे हैं। इस वक्त शहर में मिलों के भोंपू और गाँवों में गायों के रंभाने की आवाज सुनी जा सकती है। यहाँ लाल किला मैदान में दर्शकों की ऐसी ही चिल्लपों मची हुई है। ठसाठस भरा है स्टेडियम।

लीजिए, आदमी का फटा कुर्ता फर-फर फहराने लगा है। पेवेलियन से खिलाड़ीगण निकल रहे हैं। इस टीम के सिर पर कफन बँधा है। टीम के सदाबहार खिलाड़ी नेतासिंह दर्शकों का अभिनन्दन कर रहे हैं। चमचेलाल उनके पीछे हैं। उनके पीछे मूँछों पर ताव देते हुए अधिकारीपाल हैं। मैं देख रहा हूँ कर्मचारीकुमार पूरे फॉर्म में हैं। सेठमल तोंद सम्हाल रहे हैं और सबसे पीछे हैं मरियल मस्त जनताचंद। दर्शकों की तालियाँ बन्द हो गई हैं। आँखें इधर-उधर संवाद में लगी हैं। लो, ये विद्युत-छटा जगमगा उठी। लाखों दिल हारमोनियम हो गए हैं और इन्तजार की घड़ियाँ समाप्त। आ गई, कुमारी महँगाईबाला आ गई हैं। वे प्रत्येक मिनट दूनी और दूसरे मिनट चौगुनी बढ़ती हैं। वैभवपूर्ण, उन्मादित मदमस्त... दर्शकों का तन-मन हिलोरे ले रहा है। गुब्बारे छूट रहे हैं और महँगाईबाला ऊँची नजरें किए भृकुटी ताने तेज-तेज कदमों से मंडप की ओर बढ़ रही हैं। 'एक्सपर्ट कमेन्ट्री' के लिए

हाजिर हैं दादा शरद जोशी। उन्हीं से सुनिए महँगाईबाला पर और माइक्रोफोन जोशी जी को दे रहा हूँ।

"वे झटका खाती हैं तो शेयर बाजार में उठापटक मच जाती है। वे नजरें इनायत कर देती हैं तो लखपति लोग रातों-रात करोड़पति हो जाते हैं। उन्हें गुस्सा आता है तो करोड़ों गरीबों का दाना-पानी बन्द हो जाता है। उनकी ठोकर से सरकार जमीन चाटने लगती है और कारखाने राम नाम सत करने लगते हैं।"

धन्यवाद शरद जी। न जाने क्या है, महँगाईबाला रुक गई हैं। वे विशाल जनमेदिनी को घूर रही हैं और ये उनका अट्टहास। खिलाड़ियों और दर्शकों की घिग्घी बंध गई है। भारी अट्टहास। महाकवि निराला देखते तो कहते- 'हँस रहा अट्टहास रावण खल-खल।'

शांत हो गई हैं महँगाईबाला। कम हो गया है उनका उछाल। उनके लिए आज स्वयंवर का आयोजन किया गया है। जिसे चाहे पसन्द कर लें और गृहस्थी बसा कर अमन-चैन से खुद रहें और दूसरों को रहने दें। वे मुस्कुराने लगी हैं मेरी इस टिप्पणी पर और वे मण्डप तक आ गई हैं। उनके पिता महाराजा प्रजातंत्र और माता महारानी आजादी डरते-डरते खड़े हो गए हैं। सभी खिलाड़ियों ने अपनी-अपनी 'पोजीशन' सम्हाल ली है। प्रजातंत्रजी महँगाईबाला से कुछ विचार-विमर्श कर रहे हैं और महँगाईबाला मुँह फेरे मुस्कुरा रही हैं। न्योछावर हो गए हैं दर्शक इस मुस्कुराहट पर। सभी ओर से अभिनन्दन।

मैं देख रहा हूँ स्वयंवर की रस्म शुरू होने को है। मुझे रावण की बहन शूर्पणखा की याद आ रही है। महँगाईबाला उनसे भी बढ़ कर हैं। उन्होंने जान लेने की अब तक हजारों शतकें बनाई हैं और लगता है वे आज अपने खेल जीवन से सन्यास ले लेंगी। वे हाथ में हीरों की माला और माणिक का फूल लिए आगे बढ़ रही हैं। मोती बरसने लगे हैं इस अवसर पर उनके मार्ग में। खामोश। धैर्य रखें दर्शक। विचलित न हों। महँगाईबाला जी

तांडव नृत्य के मूड में हैं। वाह क्या लोच है, क्या लस है, क्या लय है! शिव के सदृश है उनका नृत्य। वे नेतासिंह की ओर जा रही हैं। सदाबहार हीरो हैं नेतासिंह। सारा देश हजम कर सकते हैं बगैर डकार लिए। देश में उनका कोई सानी नहीं। माइक्रोफोन दे रहा हूँ दादा शरद जोशी को एक्सपर्ट कमेंट के लिए।

"महँगाईबाला और नेतासिंह की जोड़ी, बेजोड़ है। राममिलाई जोड़ी है यह। नेतासिंह के गले में गोल होने के पूरे अवसर हैं आज।"

धन्यवाद शरद जी। उठ खड़े हुए हैं नेतासिंह। महँगाईबाला ने उन्हें माणिक का फूल सौंपा और... और.... और वे आगे बढ़ गईं। नेतासिंह के गले में हार नहीं डाला। स्टेडियम में 'पिन-ड्रॉप सायलेंस' है। दर्शकों की जिज्ञासा एवरेस्ट पर चढ़ गई है और महँगाईबाला दूसरी तरफ बढ़ रही हैं। चमचेलाल उन्हें साष्टांग दंडवत कर रहे हैं। वे मुस्कुराती हुई राजधानी एक्सप्रेस-सी निकल गई हैं। उनका रुख अधिकारीपाल की तरफ है। अधिकारीपाल के दस्तखत से देश साँस लेता है। वह कानून को कानून रख सकता है, चाहे तो कानून को सब्जी-भाजी बना सकता है। वैसे अधिकारीपाल की मूँछें झुक रही हैं और माइक्रोफोन शरद जी को संभावनाएँ जानने के लिए।

"नेतासिंह को गच्चा देने के बाद महँगाईबाला का अधिकारीपाल की ओर आना उनकी दूर-दृष्टि का प्रमाण है। यह जोड़ी बनी तो लम्बी चलेगी।"

और माइक्रोफोन पुनः मेरे पास। महँगाईबाला जी अधिकारीपाल के एकदम पास। उन्होंने अधिकारीपाल को चूमा सार्वजनिक रूप से और उनका हाथ उठा। उनका हाथ.... उनका हाथ अधिकारीपाल की जेब में घुसा और वापस बाहर आया। और वे 'बैक' हो गईं। छम छम छम छम। खेल अपनी चरम सीमा पर। सुशील दोषी होते तो कहते हृदय-रोग के मरीज आगे कमेंट्री न सुनें। कर्मचारी कुमार अपने पूरे फॉर्म में हाथ पसारे खड़े हैं और

महँगाईबाला ने एक सिक्का रख दिया उनके हाथों में। कर्मचारी कुमार सलाम बजा रहे हैं। दर्शक चिल्लाने लगे हैं। हाय हाय हाय हाय। महँगाईबाला ने रॉकेट की गति पकड़ ली है। और वे सेठ जी की तरफ। सेठ जी की तिजोरी में सारा देश समा सकता है। खेतों का माल उनके गोडाउन में है और कारखानों का माल भूमिगत है। वे लोहे में से तेल निकाल लेते हैं। क्यों शरद दा, क्या खयाल है आपका?

"हाय, मेरा क्या कहना! महँगाईबाला के लिए यह लास्ट योग्य आदमी है। कुछ समझ में नहीं आता महँगाईबाला की तमन्ना क्या है! शायद उन्होंने सेठमल की सम्पत्ति देखी है। इसके साथ न बंधी तो जिन्दगी भर पछताती रहेगी।"

बहुत सही है शरद जोशी। यह क्या! सेठमल महँगाईबाला को पाँवाधोक करने लगे हैं। महँगाईबाला उन्हें आशीर्वाद दे रही हैं और महँगाईबाला पुन: 'बैक'। छम छम छम छम। दर्शक दीर्घा से जोरदार विरोध। वापस जाओ, वापस जाओ महँगाईबाला वापस जाओ। वे मुस्कुरा रही हैं और सुरसा की तरह बढ़ रही हैं। वे जा रही है स्वयंवर के अन्तिम उम्मीदवार जनताचंद की तरफ। जनताचंद बेचारा गरीब, निहायत शरीफ, अल्लाह की गाय। जब चाहो तब जमूरे-सा हाजिर हो, नेतासिंह को कुर्सी दिला दे और महँगाईबाला उसके सामने।

महँगाईबाला ने हीरों का हार खुद पहन लिया और... और जनताचंद की गर्दन उनके मुँह में। वे सरे आम जनताचंद का खून चूस रही हैं। दर्शक, स्टेडियम में तोड़फोड़ करते हुए भाग रहे हैं। नेतासिंह शान्ति की अपील कर रहे हैं। अधिकारीपाल मुँह फेर कर हँस रहे हैं और सेठमल खीसें निपोर रहे हैं। जनताचंद कंकाल रह गया है और महँगाईबाला ने वह कंकाल सेठमल की ओर फेंका और वे चलीं और वे दौड़ीं बाहर की ओर, आजाद अट्टहास करतीं...।

आखिरी तारीख का इंतजार

लास्ट–डेट यानि आखिरी तारीख से मुझे बेहद मोह है। हर काम करने के लिए मैं इसका रास्ता देखता हूँ। यह मेरी सोई हुई चेतना की कुंडलिनी को झंझोड़ कर जाग्रत कर देती है। आखिरी तारीख के दिन मैं आदमी से मशीन हो जाता हूँ और महीनों का काम कुछ घंटों में समाप्त कर डालता हूँ। लगभग मेरी तरह सभी की यही स्थिति है। हमारी क्षमता, प्रतिभा और योग्यता का सही आकलन आखिरी तारीख को ही होता है, हमारे राम नाम सत् हो जाने के बाद। मुए लोग, इसके पहले कभी इतने प्रेम–विभोर भी नहीं होते।

महीने की पहली और आखिरी तारीख का माहात्म्य तो प्राथमिक शाला में ज्ञान प्राप्त करते–करते ही मुझे सुनने मिला था, किन्तु आखिरी तारीख कभी भी आ जाएगी यह बोध वर्षों बाद प्राप्त हुआ। उस दिन हायर सेकेण्डरी परीक्षा के फॉर्म भरे जा रहे थे। हमें गुरुजनों ने कांजी हाउसनुमा हाल में बैठा कर फॉर्म दे दिया था। गुरूजी फॉर्म पढ़ रहे थे और रिक्त स्थान भरने का निर्देश दे रहे थे। चार–छः गुरुजन टहल रहे थे और हमारा फॉर्म भरना देख रहे थे। फॉर्म भर गए तो गुरुजनों ने फटाफट जाँच कर ली। फीस वसूल ली। सीलें लगा दी। बंडल बना दिया और शिक्षा मंडल को भिजवा दिया। प्राचार्य बेहद खुश थे कि आखिरी तारीख का सारा काम निपट गया। तब से मैं इतना लतियल हो गया हूँ कि आखिरी तारीख का इंतजार करता

रहता हूँ। भाई लोग, आखिरी तारीख तो क्या आखिरी क्षण तक का इंतजार करते रहते हैं और फिर ताबड़तोड़ काम शुरू करते हैं गोया काम विधानसभा का प्रश्न हो गया हो।

नई पीढ़ी आखिरी तारीख की गुलाम ही बन गई है। दफ्तरों में, प्रतियोगी परीक्षाओं के पचहत्तर प्रतिशत आवेदन पत्र आखिरी तारीख को ही आते हैं। हमारी इस मानसिक प्रतिबद्धता का फायदा उठा कर कुछ लोग आखिरी तारीख के बाद विलम्ब शुल्क ले कर एक मौका और देते हैं। इसकी भी एक आखिरी तारीख होती है। यकीन कीजिए, विलम्ब से आने वाले अधिकतर आवेदन भी इसकी आखिरी तारीख को आते हैं। गनीमत है आखिरी तारीख के बहाने लोग इतना तो कर लेते हैं।

आखिरी तारीख छात्रों को क्रान्तिकारी और दूरदर्शी बनाती है। विश्वविद्यालयीन परीक्षाओं और छात्रों में साँप-नेवला संबंध होता है। छात्र सारे साल विविध गतिविधियाँ चलाते रहते हैं। शिक्षा का 'वन-डे' में अचार और मुरब्बा बनाने वाले प्रकाशक और पुस्तक विक्रेता भी इसी आखिरी तारीख की टोह में लगे रहते हैं और मार्च-अप्रैल के महीने में नेपा मिल के उत्पादन को काला कर किताबों के नाम पर बेच देते हैं। परीक्षा घोषणा के बाद छात्र इन टीकाओं को रटते हैं। तब उन्हें बोध मिलता है-"शिक्षकों ने सारे साल मटरगश्ती मारी, पढ़ाया ही नहीं। एक-दो नासमझ रंगरूटों ने पढ़ाया भी तो कोर्स पूरा नहीं किया। किसी ने कोर्स पूरा कर भी दिया तो हमारे पल्ले क्या पड़ा? वे जागरुक बन कर माँग करने लगते हैं परीक्षा-तिथि आगे बढ़ाओ, अतिरिक्त कक्षाएँ लगाओ, कोर्स पूरा करो। पेपर देने की तारीख नहीं होती तो उन्हें पता ही नहीं चलता कि उनके पेपर क्या-क्या हैं! किताबें उन्हें भ्रम लगतीं और गुरु गोरखधंधा लगते। किताबों को झाड़ने का दुर्लभ अवसर भी उन्हें नहीं मिलता।

सरकारी तंत्र की आखिरी तारीख मार्च के इकत्तीसवें दिन आती है।

सभी सरकारी कर्मचारियों में उस दिन ग्लूकोज चढ़ जाता है। चार-छः दिन में सारे साल की खरीद-फरोख्त हो जाती है और आटे-दाल का वार्षिक गणित हल हो जाता है। शेष सारे साल चाय-पानी की फिक्र में बंधुगण कुर्सियों को जलाऊ लकड़ी बनाते रहते हैं।

आखिरी तारीख हमारी पहली सामाजिक आवश्यकता है। 'आने दो आखिरी तारीख, तब देख लेंगे' का खुला चैलेंज देकर हम आखिरी तारीख के सामने घुटने टेक देते हैं। आखिरी तारीख न होती तो हम बिजली के बिलों का भुगतान नहीं कर पाते और विद्युत विभाग का फ्यूज उड़ा देते। नल के बिल पी जाते और बीमे की किस्त से पान-सिगरेट का हिसाब कर देते। आखिरी तारीख का यह उन्माद सिर्फ निम्न या मध्यम वर्ग में हो ऐसी बात नहीं है। उच्च-मध्यम वर्ग और उच्च वर्ग में आखिरी तारीख का जश्न ही निराला है। आखिरी तारीख इनके लिए जन्म और मरण का पैगाम ले कर आती है। उस दिन इनके खटारे पंखे भी फुल-स्पीड पर चलते हैं। तरह-तरह के टैक्स भरने, काले को सफेद और सफेद को विदेशी करने में आखिरी तारीख का क्षण-क्षण सार्थक हो जाता है। आखिरी तारीख को इन्हें न भूख लगती है न प्यास। ये अपने ही ब्रह्मानंद में स्वीमिंग पूल का मजा लेते रहते हैं।

आखिरी तारीख अपनी अदाकारी चुनावों में भी बताती है। चुनाव पूर्व अधिकृत उम्मीदवार बनने के लिए दिल्ली-दरबार में जमघट लग जाता है। जादूगर अपने जमूरों समेत डेरे तंबू गाड़ लेते हैं। एक टिकट के म्यान में कई उम्मीदवारों की तलवारें घुस जाती हैं। नामांकन की आखिरी तारीख के समीप आते ही पार्टी-कार्यालय हल्दी घाटी बन जाता है। मुझे लगता है चुनाव की तमाम प्रक्रियाओं के लिए चुनाव आयोग कोई आखिरी तारीख तय न करे तो इस देश में कभी चुनाव ही न हो और टिकटाकांक्षी दिल्ली में शरणार्थियों की एक नई बस्ती बना लें।

मैंने कई आखिरी तारीखों पर मिन्नतें की हैं कि बस वह एक दिन चौबीस घंटों की बजाय सौ–दो सौ घंटों का हो जाए। दफ्तर छः–सात घंटे के बजाय पचास–पचपन घंटे खुलें। शरीर और दिमाग ऐसे चले जैसे कम्प्यूटर चलता है। पर ऐसा हो जाए तो भी हम नहीं सुधरेंगे। हम तब आखिरी तारीख की बजाय आखिरी मिनटों की प्रतीक्षा करेंगे। जैसे आज भी ट्रेन रवाना होने वाली होगी तो स्टेशन पहुँचेंगे, बैंक काउंटर बंद कर देंगे तो रुपया लेने पहुँचेंगे और मरने वाले होंगे तो डॉक्टर को बुला कर उसकी फजीहत कर जाएँगे।

राष्ट्रीय खेल के लिए बैठक

हमारे देश में खेलों का स्तर बिना श्रेणी का है। सत्तर करोड़ कथित खिलाड़ियों में से सत्तर उम्दा खिलाड़ी ढूँढना मुश्किल काम है। जो जाने-माने खिलाड़ी हैं, उनमें से ज्यादातर लोग कोरम पूरा करते है। हॉकी, हाँक दी गई है। क्रिकेट वर्षा और पत्नियों से जुड़ गया है। बैडमिंटन के श्रीकांतों में तेजी-मंदी चल रही है। लॉन टेनिस महेश भूपति व लिएंडर पेस से आगे नहीं बढ़ रहा है। फुटबॉल और वॉलीबॉल में कीर्तिस्तंभ बनाने की योजना ब्लाडर के अन्दर है। पहलवान, दंड कम, राजनीति ज्यादा पेलते हैं। एथलीट, कंट्रोल के माल से कैलोरी निचोड़ रहे हैं। ऐसी बहुत सारी बातें हैं जो शौचनीय हैं, शौचालयों में भी शौचनीय है।

इन्हीं सब बातों से सरकार भी चिंतित थी। सरकार का खेल-महकमा, फाइलों की कई शतकें बना चुका था। अनुदान के अरबों रुपयों के सीधे गोल मार दिए थे। वैसे इन बातों से सरकार चिंतित नहीं थी। पिछले दिनों एक बैठक बुलाई गई। बैठक में खिलाड़ी थे, उनका अचार बनाने वाले खेल-समीक्षक थे। उनमें जंग लगाने वाले अधिकारी थे। उनको मेडल देकर अपना फोटो छपवाने वाले राजनेता थे। खिचड़ी के लिए आवश्यक सभी चीजें थीं। परिषद का तपेलेनुमा कॉमन हाल था। सो हम सब उसमें भर गए और बैठक शुरू हो गई। खिचड़ी बोलने लगी खद्-बद्, खद्-बद्। उस बैठक का उद्देश्य था राष्ट्रीय खेल घोषित करना तथा

गली–गली और मोहल्लों में खेलों को लोकप्रिय बनाना, सरकार से समुचित फंड प्राप्त करना तथा खेलों के लिए एक सर्वमान्य नीति तय करना।

राष्ट्रीय खेल पर बहस शुरू हुई। प्रथम प्रस्ताव क्रिकेट के लिए था। हमारे यहाँ क्रिकेट में संभावनाएँ भी हैं और खेल–प्रतिभाएँ भी। बहस रूपी बॉलिंग शुरू हुई। बड़ी आक्रामक थी बॉलिंग। बॉलर ने कहा समय खाऊ खेल है क्रिकेट। इतने समय में अन्य खेल सौ बार खेल कर खत्म किए जा सकते हैं। अब तो खिलाड़ियों के घरेलू–मूड पर ही क्रिकेट का खेल टिकने लगा है। अम्पायर ने इस बॉल पर 'क्लीन–बोल्ड' दे दिया। यूँ पहले विकेट का शीघ्र पतन हो गया। बॉलिंग और तेज हुई। बॉलरों का दबाव बढ़ा। बॉलर ने कहा– "खेल महँगा है, भारत गरीब देश है। क्रिकेट अमीरों का खेल है।" इसी अवसर पर उल्टे दिमाग के बॉलर–राजनेता बोले, 'समाजवादी देश में पूँजीवादी खेल!' समानान्तर बैठकिये चिल्लाए, नहीं चलेगा, नहीं चलेगा। दूसरे विकेट की क्षति इस एल.बी.डब्ल्यू से हुई। गावस्करी और द्रविड़ी गौरव की रक्षा करते हुए तीसरे एवं चौथे बल्लेबाजों ने लम्बा संघर्ष किया। तीसरे विकेट की भागीदारी में दर्शक–मनोविज्ञान और आय पर चर्चा हुई। तभी नए बॉलर योजना–सचिव ने 'रोलिंग–प्लान' बॉल की। उसे पास बैठे वित्त–सचिव ने सहजता से झेल लिया। इस विकेट के पतन के बाद शेष विकेट ताश के पत्तों की तरह ढह गए।

अब हॉकी का नम्बर आया। अतीत के स्वर्णिम इतिहास को दोहराने वाले देश में हॉकी का परम्परागत गुणगान हुआ। हॉकी के फारवर्डलाल की दलीलों को बैठकियों ने कई पैनेल्टी कार्नर दिए। क्रिकेट के बल्लेबाजों ने बल्ले से गोलकीपरी की। फारवर्डलाल पैनेल्टी कार्नर से सफल गोल नहीं बना सकते थे, इसलिए वे गोल नहीं कर सके और हॉकी को राष्ट्रीय–खेल बनने का श्रेय नहीं मिल सका।

बड़ा हंगामा मच गया बैठक में। लगा खिचड़ी में पहला उबाल आ गया है। यदि स्थिति को नहीं सम्हाला तो खिचड़ी जल जाएगी। खिचड़ी

मतलब खेल-परिषद। जब खेल ही नहीं तो खेल-परिषद क्यों? खेल परिषद नहीं तो हमारा भत्ता नहीं, स्टेटस नहीं। 'न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी' जैसी स्थिति हो गई। संकट, भयानक संकट था। खेल-परिषद के सचिव खेल प्रसाद ने हस्तक्षेप किया। उन्होंने सदस्यों को टी.ए.-डी.ए. के खतरे से अवगत कराया। सारे बैठकिये हिल गए। खिचड़ी में आया उफान शांत हो गया। आग कम हो गई और हम फिर बहस करने लगे। खिचड़ी बोलने लगी। खद्-बद्, खद्-बद्।

चर्चा कबड्डी के खेल पर चली। गली-गली, मोहल्ले-मोहल्ले में खेले जाने वाला खेल। नितांत सस्ता और सुविधापूर्ण खेल। एकदम भारतीय राष्ट्रवादी खेल। दम और खम का खेल। वित्त कुमार ने कबड्डी-कबड्डी कर कबड्डी की दिलचस्प शुरुआत की थी। कैप्टन योजनासिंह ने खेलने का इशारा मार दिया था। खेल प्रसाद ने अपनी पोजीशन सम्हाल ली थी। वित्त कुमार पाला क्रॉस कर ही रहे थे कि राजनेता-रेफरी की सीटी बज गई। वित्त कुमार की साँस ऊपर की ऊपर और नीचे की नीचे रह गई। योजनासिंह की घिग्घी बंध गई। राजनेता ने हँसते हुए कहा- "कबड्डी, प्रतिक्रियावादी खेल है, साम्प्रदायिक तत्वों का खेल है। इसे राष्ट्रीय खेल बना देंगे तो अल्पसंख्यक मर जाएँगे।" खिलाड़ियों को यह निर्णय अमेरिका और रूस के ओलम्पिक खेलों के बहिष्कार जैसा लगा।

सभी खिलाड़ी तटस्थ हो गए। खेल सचिव ने उन्हें मनाया। बैठकियों ने चाय-नाश्ता किया। इससे खिचड़ी में मसाला डल गया था। अब खिचड़ी कभी भी नीचे उतर सकती थी अर्थात बैठक समाप्त हो सकती थी। हर कोई चाह रहा था, बैठक जल्दी निपट जाए। सब घर जाएँ। कोई-सा भी हो राष्ट्रीय-खेल, उन्हें क्या?

वॉलीबॉल, फुटबॉल, टेबलटेनिस, लॉन टेनिस, गोल्फ, बैडमिन्टन के साथ-साथ खो-खो, निशानेबाजी, घुड़दौड़, खच्चर दौड़, तीन टाँग की दौड़ और गुलाम डंडा जैसे खेलों के भी नाम उठाए गए। लालफीते की

फाइल खुलती और लालफीताशाही में बन्द हो जाती। कुछ तय न हुआ। यह हम सब बैठकियों की प्रतिभा का अपमान था।

मुझमें खिलाड़ी प्रतिभा नहीं थी। मैं आलाकमान की इच्छा से खेल–परिषद का सदस्य बना था। मैंने भी अपनी टेबल बजाई। बैठकिये चौंके और मेरी तरफ देखने लगे। मैंने सुझाया– 'गुल्ली–डंडा' को राष्ट्रीय खेल घोषित किया जाए। यह खेल हमारी सांस्कृतिक परम्परा का द्योतक है। मकर संक्रान्ति के पावन पर्व पर बच्चे–बूढ़े व स्त्री–पुरुष सभी गुल्ली–डंडा खेलते हैं। मौसम–बेमौसम बेखटके खेला जाने वाला खेल है यह। यह खेल सिखाता है छोटे और बड़ों का मिल कर रहना। इसमें न मैदान की झंझट है न खिलाड़ियों की सीमा की। बहुत कम बजट चाहिए। बस, राजनीति के खर्चहीन खेल से यह कुछ खर्चीला है। पर इसे बच्चे भी खेल सकते हैं।

राजनेता ने ताली बजाई। वित्त कुमार ने योजना सिंह को देखा। योजना सिंह ने खेल प्रसाद को देखा। खिचड़ी बन गई। राजनेता ने खिचड़ी उतारते हुए कहा– "भाइयों और बहनों, हम सर्वानुमति से गुल्ली–डंडा को राष्ट्रीय खेल घोषित करने की अनुशंसा करते हैं।" हाल में हम भाई ही भाई थे। बहन थी ही नहीं। राजनेता ने कहा था इसलिए हम अपने में बहन ढूँढने लगे।

फाइल इतनी दीजिए

आजकल दफ्तरों में फाइल गुम हो जाना सामान्य बात हो गई है। ऐसा लगने लगा कि फाइलों के बाबुओं की तरह पर निकल आए हैं और वे भी इनकी तरह दफ्तर से सफलतापूर्वक गायब होने में कामयाब हो जाती हैं। इस सिलसिले में मुझे पिछले दशक की एक घटना याद आती है। यह घटना एक भारतीय विश्वविद्यालय की है, जिसमें दूसरे विश्वविद्यालयों की तरह हर छोटे-बड़े विषय के अलग-अलग ठेकेदार थे, दुकानें थीं, जिन्हें विभाग के नाम से जाना जाता था। शास्त्र सम्मत सामाजिक घटनाओं को घटाने का ठेका आज भी समाजशास्त्र विभाग का है। अतः इस महान घटना को समाज शास्त्र विभाग में ही घटित होना चाहिए था। सो यह घटना वहीं घटित हुई।

उन दिनों कैम्पस में एक साँड रहता था। साँड बुद्धिजीवी, मदमस्त, अल्हड़ और नौजवान कैम्पसियों जैसा था पर वह फाइलभक्षी था। एक दिन क्षुधा शांत करने के लिए वह समाजशास्त्र विभाग में जा घुसा और कुछ महत्वपूर्ण फाइलें खा कर चला गया। क्षुधा निरन्तर है, उसे फिर भूख लगी। वह पुनः आया तथा कुछ और फाइलें खा गया। यह क्रम चलता रहा। लोग तटस्थ होकर देखते रहे और साँड फाइलें खाता रहा। एक दिन सारी महत्वपूर्ण फाइलें खत्म हो गईं सिर्फ कचरा फाइलें बचीं तब साँड ने आना बंद कर दिया। महत्वपूर्ण फाइलों के गुम हो जाने की बात जब प्रशासन को मालूम हुई तो हल्ला मच गया। विभागीय जाँच हुई। इसका परिणाम वैसा ही

गुड़-गोबर था जैसा तमाम विभागीय जाँचों का होता है। मुझे लगता है साँड फाइल कक्ष में घुसा होगा। उसके प्रवेश के साथ ही कक्ष में क्रान्तिकारी परिवर्तन आए होंगे, साँड ने सिंह गर्जना की होगी। तब अलमारियाँ स्वत: खुली होगीं और महत्वपूर्ण फाइलों ने बाहर निकल प्रार्थनारत हो कहा होगा- "हे साँड देवता, हम महत्वपूर्ण फाइलें हैं हमारा भक्षण करो। हमारे भक्षण से इस विभाग का भला होगा।" विघ्नविनाशक साँड देवता ने उन सभी फाइलों को उदरस्थ कर लिया होगा। क्षुधा शांत हो गई होगी और वह चला गया होगा। चूँकि क्षुधा चिर है वह फिर भड़की होगी और ऐसा ही होते रहने में सब महत्वपूर्ण फाइलें खत्म हो गई होंगी। जाँच अधिकारी की थीसिस भी इससे ज्यादा भिन्न नहीं थी। इसलिए विभाग पर आया संकट टल गया। तब से मैं फाइलों को रफा-दफा करने में भगवान का हाथ मानता हूँ।

फाइलें सर्वव्यापी सत्य हैं। वह अमेरिका में भी है और बरेली में भी। फाइल त्रिलोकी है, जमीन, अंतरिक्ष और सागर पर भी। फाइलें त्रिकालदर्शी तो हैं ही। भूतकाल की फाइलें इतिहास लिखने वालों के संदर्भ ग्रंथ हैं तो भविष्यकाल की फाइलें अफरा-तफरी करने की वृहत योजनाएँ हैं। वर्तमानकाल की फाइलें आयोगों का रोजगार हैं। फाइलों की इस गति पर देश की प्रगति टिकी है। मैंने पाया है कि तानाशाही हो या प्रजातंत्र, दुर्गम पर्वत हो या सात समन्दर, फाइलें बेखटके प्रधानमंत्री की तरह इधर से उधर दौड़ती हैं। फाइल रुकी, काम अटका। साम्यवाद, पूँजीवाद, समाजवाद व चमचावाद सभी व्यवस्थाएँ फाइलवाद के सामने नतमस्तक हैं। फाइल भले ही पुट्ठे का गत्ता है पर वह बाबू का भत्ता है, अफसर की सत्ता है और राज्य सरकार के तख्ते का हत्था है। फाइल का लालफीता प्रशासन की जान है, इसीलिए लालफीताशाही सरकार का नाम है।

फाइलें खुद तो भोली-भाली होती हैं, पर बाबुओं की किस्मत हो तो फाइलें मंत्रियों के साथ हवाईजहाजों में घूमती हैं तथा भाग्यहीन हो तो गट्ठरों में बंधी पड़ी रहती हैं और धूल चाटती रहती है फिर भी सभी फाइलों

में कुछ सर्वमान्य गुण हैं। इनसे लोग कतराते हैं, बाबू टरकाते हैं और अफसर धमकाते हैं। फाइलों का महायज्ञ करके कई सत्ताधारी महाविनाश से बचे हैं। सरकार बदलने पर कई पूर्व राजनेताओं ने सत्ता हस्तांतरण के समय फाइलों का हवन सामग्री की तरह उपयोग किया है।

प्रजातंत्र को अजर-अमर बनाए रखने के लिए फाइलों ने एड़ी-चोटी का जोर लगाया है। पिछले वर्षों की एक घटना है। पवित्र भारत भूमि के एक राज्य में एक मुख्यमंत्री थे। वे बड़े घपला प्रिय थे। उन्होंने अपने घपलों को सार्वजनिक प्रशस्ति से बचाने के लिए खुद ही एक जाँच आयोग बना डाला और अपनी महत्वपूर्ण फाइलें उसे दे दीं। फाइलें सरकार की दुखती नस होती हैं। कोई दबा दे तो सरकार कराह उठती है। फाइलें सौंप कर राज्य सरकार ने अपनी नस खुद दबाना चाही। केन्द्र सरकार से 'आ बैल मुझे मार' वाला यह दर्द नहीं देखा गया, उसने दूसरा आयोग बना दिया, ताकि राज्य का दर्द कम हो सके। विचित्र स्थिति बन गई। फाइलें एक-एक थीं और आयोग दो। दूसरे आयोग ने फाइल माँगी। राज्य आयोग ने केन्द्र आयोग से कहा- 'जा, जा बड़ा आया फाइलें लेने।' केन्द्र आयोग रुआँसा हो गया। उसने समझाया, छोटे भाई फाइल के बिना हमारा जन्म निरर्थक है। चलो फाइलों की फोटो कॉपी ही दे दो। उत्तर मिला- 'फोटोकॉपी बनने में पाँच साल लगेंगे।' पाँच साल में खरबों रुपयों की पंचवर्षीय योजनाएँ बराबर हो जाती हैं तो फिर इन फाइलों की औकात ही क्या? फाइलों के झगड़े में राज्य सरकार दर्द मुक्त हो गई। न बाँस बचा न बाँसुरी बजी।

भारत जैसे विकासशील देश में फाइलों का स्थान महत्त्वपूर्ण मानना ही पड़ेगा। रोजगार बढ़ाने वाली फाइलों को साहित्य में श्रीवृद्धि करने का तमगा प्राप्त है। भई, फाइल खिसकानी पड़ेगी, फाइल देखनी पड़ेगी, फाइल ढूँढनी पड़ेगी, फाइल बदलवानी पड़ेगी, फाइल पड़ी है, फाइल चल रही है आदि मुहावरे आम आदमी के पल्ले पड़े हैं। आप इन फाइली मुहावरों का अर्थ समझ जाएँ तो ठीक है, नहीं तो बाबू शुद्ध हिन्दी में आपको इनका अर्थ

और अनर्थ समझा देगा।

बेचारा ऑफिसजीवी आदमी 'फाइल से, फाइल द्वारा, फाइल के लिए' हो गया है। मैं हर महीने की दूसरी तारीख से सोचता हूँ कि यदि फाइल का उद्‌भव न हुआ होता तो बाबुओं का दम निकल गया होता। इस महँगाई के जमाने में क्या ओढ़ता, क्या बिछाता? तृतीय श्रेणी के ग्रेड में क्या खुद खाता और परिवार को क्या खिलाता? उसने फाइल को अपना सर्वस्व माना तो बुरा नहीं किया। तारणहार हो गई हैं फाइलें। इसलिए प्रातः स्मरणीय प्रभु से तमाम बाबुओं की ओर से मेरी प्रार्थना है –

फाइल इतनी दीजिए जामे कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ, बॉस न भूखा जाय।।

सहमति की संस्कृति

हमारी संस्कृति के विश्व में बड़े चर्चे हैं। जो भी विदेशी, भारत सरकार के आमंत्रण पर सरकारी सुख भोग गया है वह हमारी संस्कृति का गायक बन गया है और हर उपयुक्त अवसर पर कहता है कि संसार में कोई संस्कृति है तो भारतीय संस्कृति। एशियाड के सफल आयोजन और गुट निरपेक्ष देशों के सम्मेलन की सफलता ने तो संसार को सोचने के लिए मजबूर कर दिया है कि भारत में ऐसा क्या है जो सफलता की कुंजी इसके पास है? इस मुद्दे पर तमाम लोगों के नजरिये अलग-अलग हो सकते हैं, फिर भी, वे मुझ से सहमत होंगे कि हमारी सफलता की कुंजी हमारी सहमति है या कि बातचीत, वाद-विवाद और लिखा-पढ़ी के बाद अन्ततोगत्वा हमारा विषय वस्तु से सहमत हो जाना है।

अंग्रेजों ने जब कृषि प्रधान भारत में पदार्पण किया था तब निश्चित ही एक अंग्रेज ने दूसरे अंग्रेज से कहा होगा- "सच्र्ड, वी सच्र्ड एन एग्रीकल्चरल कंट्री।" उनका यह उद्बोधन हमारे चरित्र का सही विश्लेषण करता है। एग्री अर्थात सहमत और कल्चर यानि संस्कृति। शायद इस आधार पर भी भारत सहमत संस्कृति का देश माना जाता है। भारत का ऐसा संस्कृति-चरित्र आदि से हो या न हो पर अंग्रेजों के जमाने में जरूर था। कबीर जैसे संत कवि ने पन्द्रहवीं सदी में लिखा था-

कबीरा खड़ा बजार में सबकी मांगे खैर।
ना काहू से दोस्ती ना काहू से बैर॥

कबीर से लेकर अब तक लोगों को सहमत बनाने की दर में बेहद वृद्धि हुई है। तर्क व्यवस्था को छोड़ कर चमचा व्यवस्था अपना लेने से सहमति बनाने की दिशा में गति आई है। अब हर अच्छी बात का श्रेय सत्तारूढ़ नेता को और बुरी बातों के लिए अति-उत्साही अधिकारियों को लताड़ने की परम्परा बन गई है। सहमत संस्कृति के रख-रखाव के लिए सरकार ने बाबुओं की फौज भर्ती कर रखी है जो प्रतिदिन यस सर, यस सर और हाँ जी, जी हाँ की मुद्रा में व्यायाम करती है। कनिष्ठ अधिकारी अपनी सहमति 'या' कहकर प्रकट करते हैं। इस सुसंस्कृतज्ञ फौज के कारण ही कागजी प्रगति से सरकार और जनता दोनों परस्पर सहमत हो जाते हैं।

सहमति की संस्कृति के प्रसार में भारतीय प्रेस आदमी-आदमी को देख कर अपना धर्म निभाती है। आदमी फायदे का लगे तो उसकी इमेज बढ़े ऐसा छापना और आदमी काँटेदार हो तो वह ठिकाने लग जाए ऐसा छापना ही प्रेस की प्रतिभा है। जैसे वे खबर छापते हैं- 'चालीस सदस्यीय मंत्रीमंडल के सभी सदस्यों ने उपस्थित हो कर हाईकमान के निर्णय का स्वागत किया।' वे आगे लिखते हुए अपने चार-छः लोगों के नाम लिख देंगे और शेष को आँकड़ों में जोड़ देंगे। यदि सहमति-विधा न पनपी होती तो पाठकों को अरोचक नाम भी रोज पढ़ने पड़ते। वह तो अच्छा हुआ 'समाचार' को पुनः चार एजेंसी वाला समाचार बना दिया अन्यथा सहमति की भाषा और शब्दों में आकाशवाणी की तरह सहमत समाचार व्यवस्था स्थापित हो जाती।

सहमत-संस्कृति की मूल भावना पर विचार करें तो लगता है कि हम उनसे सहमत हैं जो सत्तासीन है या जिनकी सत्ता तक पहुँच है। साफ-सरल शब्दों में कहें कि उनमें वजन है। भारत में वजनदार राजनीतिज्ञ कभी अपने स्वार्थ के लिए नहीं लड़ता वह तो कुछ सिद्धांतों की खातिर लड़ता है और पद पा कर सहमत हो जाना ही उसका सबसे बड़ा सिद्धान्त है। सहमत-संस्कृति में वजन भी है और संतुलन भी। आपमें वजन है तो मैं आपसे सहमत हूँ और मुझमें ज्यादा वजन है तो आप स्वतः मुझ से सहमत

हो ही जाएँगे।

यह सहमति की संस्कृति का ही असर मानिए कि एक आह्वान पर जनता देश के लिए कुर्बानी दे सकती है और दूसरे आह्वान पर अपने ही राज्य में शांति और व्यवस्था का भुर्ता बना सकती है। जनता जानती है कि जीने के लिए दाल-रोटी चाहिए इसलिए वह दाल-रोटी पर सहमत हो जाती है और नेता लोग वक्तव्य दे देते हैं कि देश खुशहाली और प्रगति की ओर बढ़ रहा है। कर्मचारी भी इस कागजी स्थिति से सहमत हो जाते हैं और महँगाई भत्ता, बोनस, वेतन वृद्धि आदि की माँग करने लगते हैं। सरकार आदतन ना-नुकुर करती है और फिर सहमत होती जाती है। फिर भी, सहमत-संस्कृति में पुलिस की भूमिका अहम और अनिवार्य है, क्योंकि वही तो एक ऐसा सिद्ध माध्यम है जो असहमत को सहमत बना सकती है। पुलिस जब कभी सहमति के स्तर से ज्यादा सताने लगती है तो दाल-रोटी के चक्कर में पड़े आदमी की ओर से विपक्षी राजनीतिज्ञ अलार्म घड़ी की तरह टनटना उठते हैं और जनता उनकी तर्ज में लोकतंत्र चाहिए, जनतंत्र चाहिए आदि गीत गुँजाने लग जाती है। भरतपुरी लोटे की तरह आम भारतीय के मन में सत्ता पक्ष भी है और प्रतिपक्ष भी। जब एक बिगड़ैल हो जाता है तो दूसरा लाड़ला हो जाता है और संस्कृति, सहमति के साम्य पर बनी रहती है।

सहमत-संस्कृति का ध्येय सभी लोगों को सुखी करना है, सर्वे भवन्तु सुखिन:। सब लोगों को प्रसन्न करने के लिए सरकार प्रतिवर्ष बजट प्रस्तुत करती है और जान-बूझ कर बहुत से कर लगा देती है। सत्तारूढ़िये ऐसे बजट को प्रगतिशील और सर्वोत्तम बजट बताते हैं तो प्रतिपक्ष वाले बजट को घोर अन्याय करने वाला और गला घोंटू बताते हैं। बेचारी जनता तमाशा देखती है और प्रार्थना करती है कि सरकार कुछ टैक्स कम कर दे। सरकार सहमति-संस्कृति की प्रवक्ता है, वह करों में कुछ राहत घोषित करती है जिससे सब खुश हो जाते हैं और सरकार के प्रजातंत्रीय होने के मुद्दे पर आम सहमति हो जाती है।

खामोश! प्रवेश चालू है

मैं शिक्षक हूँ। क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्रों की तरह हम में भी उच्च और निम्न जातियाँ हैं। मैं उच्च श्रेणी शिक्षक हूँ। कुंजी पढ़ता हूँ और गणित पढ़ा देता हूँ। प्रति वर्षानुसार इस वर्ष भी स्कूल खुल गए हैं और मैं आपकी सेवा में, आपके बच्चों की खातिर में तथा आपके बच्चों के होने वाले बच्चों की खिदमत में हाजिर हूँ।

आप जानते ही हैं, भर्ती चालू है। स्कूल में बीस दरवाजे हैं, दस खिड़कियाँ हैं पर कमरे पाँच ही हैं। सारे दरवाजे प्रवेश के लिए खुले हैं। आगे के दरवाजे से पालक आते हैं। पिछले दरवाजे से दलाल आते हैं। दाएँ दरवाजे से नेता आते हैं। बायाँ दरवाजा निर्गम द्वार है। इस द्वार से सब घर जाते हैं, काम हो जाने की खुशी लिए। बच्चे को प्रवेश मिला, मतलब माँ-बाप दस महीने शहंशाह हो गए और शिक्षक आया बन गए।

अन्य कमरों में स्कूल चल रहा है। कपड़ा मिल की तरह चल रहा है, तीन-तीन शिफ्टों में। बच्चे, कपास के ढेर जैसे आँगन में बिखरे हैं, कहीं रुई की गठान जैसे गोदामनुमा जमे हैं। शिक्षक के पास हाथी-दाँत का एक मुँह है। सरकारी जबान है। वह कभी जीनिंग फैक्टरी की तरह चलता है, कभी विविंग मशीन की तरह। कच्चे माल की तरह बच्चे उसके सामने आते-जाते रहते हैं। वह निर्विकार ग गणेश का, ग गधे का और ग गब्बर का करता रहता है।

टाटपट्टियाँ कम हैं। जितनी हैं वे विवाह-समारोहों में लुगदी खा रही हैं। बच्चे बस्तों के ऊपर बैठे हैं। शाला भवन की छत टपक रही है। बच्चे दुविधा में हैं। बस्ते से सिर ढँकेंगे तो नेकर पर फर्श रेखांकित हो जाएगी और इस टपकन से नहीं बचे तो पूरे स्कूल को अस्पताल में भर्ती करना पड़ेगा। ख़ुदा का शुक्र है किताबें अभी नहीं छपीं और कागज-मिलें कॉपियों के लिए कागज बना रही हैं। यदि कॉपी और किताबें बाजार में आ जातीं तो अनर्थ हो जाता।

हमारा दस लोगों का स्टाफ है। शिक्षक हम तीन हैं, बाकी सीन-सीनरी हैं, मौसम-मौसम आते हैं। हम पढ़ाने से ज्यादा कंडक्टरी करते हैं। हाजरी लगाना, पानी-पेशाब की छुट्टी देना, उपस्थित बच्चों का जोड़ मिलाना और प्रगति-डायरी भरना, हमारा मुख्य कार्य है। हम तीनों शिक्षक प्राचार्य महोदय के सामने हैं। वे व्यस्त हैं। मुक्त मन से प्रवेश दे रहे हैं। जो आए सो पाए। मैदान में धींगा-मस्ती कर रहे गधे न जाने क्यों ओटले के ऊपर चढ़ने लगे हैं। प्राचार्यजी का उत्साह इससे भी बढ़ गया है। वे कहते हैं- "सात सौ हो चुके हैं, एक हजार का लक्ष्य है। इस बार इतनी ग्रांट मिलेगी कि.... ।" वे वाक्य पूरा नहीं कर पाते। उन्हें पहले ही डकार आ जाती है। हम काँप जाते हैं। ऐसे लक्ष्यों से हमारी तनख्वाह और इंक्रीमेंट पर सीधा असर पड़ता है। लक्ष्य बच्चों की भर्ती का हो या परिवार नियोजन का, शिक्षक के लिए फाँसी का फंदा ही होता है।

मैं विनम्रतापूर्वक उन्हें अपनी जबान अर्पित करते हुए कहता हूँ- "सर, बारिश हो रही है, छतें टपक रही हैं, क्या करें? वे आई.सी.एस. अधिकारी जैसे फुग्गा बन जाते हैं। गाली-गलौच वाली मुद्रा में कहते हैं- "आखिर तुम लोग मास्टर के मास्टर रहोगे। छतें टपक रही हैं, तो छुट्टी कर दो। कोई भी लड़का स्कूल में नहीं मरना चाहिए। कोई लड़का स्कूल में मर गया तो सब सस्पेंड हो जाओगे। जाओ-जाओ सबकी छुट्टी कर दो, फिर घर में मरें तो मरें। उसमें हमारा क्या दोष। आप लोग मास्टरी करते हैं और दिमाग

मेरा खाते हैं। जाइए क्लास में। कमरा नम्बर चार की दीवार ढह सकती है। कमरा नम्बर दो की छत क्रैक है। ये स्कूल है स्कूल, वल्लभ भवन नहीं। मुझे प्रवेश देने दो।"

मेरी आँखें नम हो गईं। प्रिंसिपल साहब कोई और गाली दे देते। 'मास्टर' गाली देते हुए धरती क्यों नहीं फट गई? हम बैरंग लिफाफों की तरह अपनी-अपनी कक्षाओं में चले आए। स्कूल ढहने की कल्पना से सबका चेहरा शोकमय हो गया। इधर क्लास में बच्चे चिल्ला रहे थे। क्लास, काँजी हाउस जैसी लग रही थी। कॉपियाँ होतीं तो कागजी नावें दौड़तीं। टेबल कुर्सियाँ होतीं तो लड़के उनके फाचरे बना देते। मैं सिर झुकाए कक्षा में घुस गया। लड़के चुप हो गए। इस चुप्पी ने मुझे बोध दिया, मैं घर में नहीं स्कूल में हूँ।

बाहर बारिश हो रही थी। लड़के सहमे-सहमे मेरा मुँह देख रहे थे। मैंने कहा- 'छुट्टी'। बच्चों ने बस्ते उठाए और ऐसे भागे जैसे मशीनगन से दनादन गोलियाँ निकल रही हों। उनका यूँ भागना हमारी सार्थकता थी। हम शिक्षक, गलियारे में खड़े-खड़े बारिश देख रहे थे कि साहब आए। उन्होंने और प्रवेश पाए छात्रों की सूची देते हुए कहा- "रजिस्टर में नाम चढ़ा लेना।" साथी शिक्षक बिजली जैसे कड़कने को थे। मैंने होठों पर उँगली रख कर संकेत दिया 'खामोश! प्रवेश चालू है' और हम नए नाम चढ़ाने चल दिए।

ऐसे मत बरसना बदरवा

नीले नभ को कैसा श्यामवर्णी बना दिया है बदरवा तुमने। कितने 'क्यूसेक' पानी भर लाए हो इसमें? मेरा कलेजा मुँह तक आ गया है तुम्हारा विकराल रूप देखकर। ऐसे मत बरसना बदरवा कि मैं शासकीय ठेकेदार, काली सूची में आ जाऊँ और सिर्फ ठेकेदार रह जाऊँ। मेरे ठेके से बने आलीशान भवन तुम्हारी रसधारा में विलीन हो कर गारा बन जाएँ और इस निर्माण कार्य के पेमेंट से जुड़े मेरे सपने और अफसरों के ताश महल तुम्हारे बरसने में ढह जाएँ।

कितने अच्छे रहे हो बदरवा तुम। पिछले तीन-चार साल भी तो बरसे हो धीरे-धीरे, रुक-रुक कर। हम तो समझे थे तुम्हें भी 'विटामिन सरकार' का चस्का लग गया है। तुम्हारे ऐसे बरसने की अदा से तो एल. आई.जी. कॉलोनी ज्यों की त्यों खड़ी रही है। बच्चों की उठापटक से आसपास पलस्तर खिर गया है और कुछ फर्श उखड़ गए हैं। कहीं-कहीं भूगर्भीय कमजोरी के कारण दीवारों में क्रेक उभर आए हैं। किराएदारों को ढंग से रहना भी नहीं आता तो कोई क्या करे? वे भले ही मकान को अखाड़ा समझते रहे बदरवा पर तुम ताबूत भवन को साबूत बनाए रखना। बदरवा एम. आई.जी कॉलोनी की तरफ अब खतरा नहीं है। अनुबंध की अवधि निकल गई है। तुम उधर ऐसे बरसना कि पूरी एम.आई.जी. कॉलोनी अरब सागर में जा कर मिल जाए। हम फिर से बन्द निविदा खुलवा लेंगे और दो-चार साल

फिर चक छानेंगे।

बदरवा उधर भूरीखेड़ी, बड़लावदा, कनासिया और मताना में मत बरसना। एक–तीस का माल लगाया है उधर स्कूलों में। खिलाई–पिलाई ज्यादा हो जाने की वजह से तुम्हारे भरोसे इतनी रिस्क उठा ली। अपने बच्चे तो पब्लिक स्कूल में पढ़ते हैं, इन स्कूलों में पब्लिक के बच्चे पढ़ते हैं। इनकी लाज तो तुम्हें ही रखनी पड़ेगी बदरवा। ये इन्द्र भगवान भी गजब ढा रहे हैं। जोर–जोर से नगाड़े बजवा रहे हैं। हमारे ई.ई. साहब की साँस बैठ रही है। एस.डी.ओ. साहब पूजा–पाठ करा रहे हैं। पूरे विभाग में शोक छा गया है बदरवा। तुम इसी तेवर में बरस गए तो इस साल के निर्माण कार्यों का क्या होगा? शायद, हमारे साथ–साथ सार्वजनिक निर्माण विभाग वालों का भी निर्वाण हो जाएगा।

बदरवा तुम यहाँ क्यों बरसते हो? तुम्हें तो बरसने का टारगेट पूरा करना होगा। जयपुर में बरस लिए तो बरस लिए, अब चेरापूँजी में ही बरसो। यहाँ तो हर साल राहत कार्य चलते हैं। राहत कार्य से लोगों को राहत मिलती है और हमें कार्य मिलता है। इसके निमित्त हम भगवान का दाना–पानी कर देते हैं। चंदाखोरों से रसीदें कटा लेते हैं। इस बार भी तो इन्द्र महाराज को प्रसन्न करवाने के लिए महायज्ञ करवाया था। उन्हें पिछले सालों की तरह ही प्रसन्न करने का उद्देश्य था बदरवा कि वे वर्षा पर कंट्रोल लगा दें। इधर का सारा पानी पटना, दिल्ली और कच्छ में बरसा दें, भले ही उधर सब फिर से जलमग्न हो जाए। इस बार इन्द्रदेव को क्या हो गया बदरवा जो इतने सारे काले स्याह मेघों की हमारे इलाके में भेज दिया है। वे गरज भी रहे हैं और बरस भी रहे हैं। बदरवा, इन्द्र से कहना कि हम मंदिरों में अखण्ड पाठ चालू करवा देंगे, गाँव में ढिंढोरा पिटवा देंगे कि सब लोग गाँव के बाहर खाना पकाएँ और इस तरह 'उज्जैनी' मनाएँ। ऐसा करें तब आ कर टपक जाना बदरवा। लोगों की इन्द्र में भी श्रद्धा बढ़ जाएगी। तुम भरपूर बरस गए बदरवा तो मेरे दूसरे मकानों की छतें धार–धार रोएँगी और किरायेदार सरेआम मेरा

पुतला जलाएँगे।

खैर बदरवा, तुम अपनी सुनाओ। क्या हो गया तुम्हें, जो भक्तों को डरा रहे हो? 'मेघ कुल की बदलियाँ' पर चर्चा के लिए हम ठेकेदारों के सौजन्य से बुद्धिजीवियों ने आयोजन किया है। एक-आध सप्ताह ठहर जाओ तो श्रृंगार रस के कवियों का जमघट भी जमा लेंगे। वे मंच को पनघट बना कर चहुँ ओर तुम्हारा राग फैला देंगे। बदरवा सुनो तो! व्याकुल न करो। अंधेरे-घुप्प आकाश में बिजली कड़कड़ा रही है, गड़गड़ा रही है। मेरा मन भावी मंत्रियों जैसा बैठा जा रहा है। न खाने की सुध है न पीने की। निगोड़ी आंधी कैसा पैशाचिक नृत्य कर रही है। यह न पुरवा है, न पछुआ है, गठबंधन सरकार जैसी मनचली है। इसे कमरों की कमर जैसी दीवारों और सागोल से जुड़ी मुंडेर का जरा भी ख्याल नहीं है। गाँव वालों के लिए यहाँ से प्याऊ निकाली है मैंने। इतना धर्म करने पर भी भगवान का कोटा पूरा नहीं होगा तो मैं भाग्य विधाता अफसरों और उनके बाल-बच्चों को कैसे पालूँगा? बाजारों में मायावी अप्सराओं की कारें फिर कैसे अवतरित होंगी?

देखो सटोरिए आ गए हैं। लगाईवाल दाँव लगा रहे हैं कि कवेलू भीगेंगे, नालियाँ बहेंगी, पूल पर पानी आ जाएगा। बदरवा, बाजार में सट्टे के खाईवाल नहीं आए हैं, इसलिए मेरा मन बैठ रहा है। मत बरसना बदरवा, ऐसे मत बरसना।

कलमकार! नारे रचो

गोष्ठीजीवी साहित्यकारों, बहुत दिन हो गए होंगे साहित्य रचे। कोई नया वाद ही नहीं निकाला। बिना वाद के वाद-विवाद नहीं होता। लिखो भी तो क्या? परजीवी संपादकों, महीनों हो गए होंगे कुछ नया साहित्य पढ़े। नए साहित्यकार घटिया लिखते हैं उन्हें क्या पढ़ना? जमे हुए साहित्यकार मंजा हुआ लिखते हैं, उनको भी क्या पढ़ना? पढ़ने के लिए कुछ भी नहीं बचता। पत्रकारों, आपने खबर का नाम ही सुना होगा क्योंकि खबर के नाम पर सब कुछ सूचना प्रकाशन विभाग द्वारा लिखा होगा। आप सब के लिए एक खास बात है सचेत हो जाओ और पढ़ो। जोर से पढ़ो ताकि खुद भी सुन सको। इस देश में नए नारों की जरूरत है, नारे रचो। हे कलमकार! उठाओ कलम, जलाओ धूम्रदंडिका, चढ़ाओ शिवप्रसाद और घिसो। पुराने नारों पर रद्दा घिसो। चमकाओ, नया बनाओ या विदेशी नारों का भारतीयकरण करो। इस देश में नए नारों की सख्त जरूरत है।

सरकार हरकारों की हो या चमचों की। वोटों की हो या तमंचों की। सरकार का काम है सोये रहना या अपने लोगों में खोए रहना। जनता का फर्ज है नया नारा लगाए। जैसे 'बेड़ा गर्क हो रहा है, देश नर्क हो रहा है तब सरकार हड़बड़ाएगी, देखेगी, उसे लगेगा उसका सिंहासन डोल रहा है, वोटर सरकार के विरुद्ध बोल रहा है। सरकार एक कार्यक्रम देगी, नया भ्रम देगी। उसमें कुछ सूत्र होंगे। यह भी एक नया नारा होगा, कामचोर सरकार का

सहारा होगा। जनता को लगेगा अब कुछ काम होने वाला है। वह चुप हो जाएगी। जनता की चुप्पी से सरकार भी चुप हो जाएगी। फिर वही मस्ती होगी, चमचों की बस्ती होगी।

लोगों ने आपात काल में आपात नारे लिखे। ट्रकों पर लिखे, ठेलों पर लिखे, मूत्रालयों और मंत्रालयों में लिखे। सारा देश नारा हो गया। सरकार बदली, क्रान्ति के नारे लोगों ने पोत दिए। अनुशासन का नारा, जेब में रख लिया। मुझे दुःख है और आपको भी होना चाहिए कि नारे मिटे और अनुशासन मिट गया। देश वहीं का वहीं रह गया। प्रगति का दायित्व नारों का है। पुराने नारे खत्म हो गए हैं। नारा नहीं होगा तो न 'क्यू' होगी, न राशन होगा, न अकर्मण्यों का सिंहासन होगा। अतः हे कलम के धनी उठाओ कलम और लिखो, कमजोर सरकार को सहारा दो, निठल्ले लोगों को नारा दो।

नारा विटामिन का इंजेक्शन है। लगते ही जोश आ जाता है। सीधे-सादे लोग प्रतिक्रियावादी बन जाते हैं। सड़कें भीड़ बन जाती हैं। नर में 'आ' लगा यानि कुछ बढ़ा। बना नारा। नारी का अवमूल्यन किया बना नारा। दोस्त, नर और नारी के बीच की चीज है नारा, वैसी ही क्रान्ति का प्रतीक है नारा। नारे में क्षमता है मुर्दाबाद की, नारे में प्रतिभा है जिन्दाबाद की। नारे से आदमी अमर रहता है, नारे का वंशानुगत असर रहता है। इतनी महान कला के बारे में साहित्यकारों को किसी ने दिशा नहीं दी। मैं दे रहा हूँ। कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध, लेख से भी ऊँचा है नारा जैसे 'झंडा ऊँचा रहे हमारा'।

कलमकार दोस्तो, नाम प्रगति का पूजक है, अवनति का सूचक है। आप नारा लगाइए जय। गोबर गणेश महान हो जाएँगे, पत्थर भगवान हो जाएँगे। आप नारा लगाएँगे- हाय-हाय। लोग होशोहवास खो जाएँगे। बड़े-बूढ़े रो जाएँगे। नारा चित्त-पट है, कभी हेड कभी टेल। बकौल इंदिरा गाँधी, नारा है समय की आँधी। नारा इसलिए नए युग के नए साहित्य की

पहचान है। नारे में भूत, भविष्य और वर्तमान है। इसलिए कलमकार, दौड़ो, नेताओं से नाता जोड़ो और नारे लिखो। जैसे हम प्रगति की ओर बढ़ रहे हैं। आकाश से उतर रहे हैं, पाताल चढ़ रहे हैं। देशवासियों को लगेगा कि निःसंदेह अब हरामखोरी की बजाय सुविधाभोगी साहित्यकार काम करने लगे हैं। महाकाव्यों की जगह सार्थक नारे लिखने लगे हैं।

दोस्त, साहित्य तो सिर्फ समाज का दर्पण हैं। नारे सारे देश का दर्पण होते हैं, बहुत बड़ा दर्पण। इसलिए साहित्य से नारा बड़ा है। साहित्य करेला है तो नारा नीम चढ़ा है। मुआयना कीजिए। काँपते स्कूली अध्यापक बोलते हैं देश के बच्चे... अधनंगे बच्चे हाथ तानते हैं, कहते हैं... देश की दौलत। बच्चे गरीब, इसलिए देश गरीब। दूसरा मुआयना। हम जन्मतः संघर्षशील होते हैं। पैदा हुए, राग तोड़ी–फोड़ी में रोए। मणिपुरी शैली में हाथ चला, कत्थक में पाँव। सारा शरीर भरत नाट्यम करने लगा। माँ–बाप ने प्राथमिक शाला में भर्ती करवाया। संघर्ष की रिहर्सल शुरू। स्कूल का पहला दिन। टाटपट्टी एक, बच्चे सौ, क्या करो? एक–दूसरे को धक्का दो। प्रभात फेरियों, जन्म दिवसों और हड़तालों के नारे लगाते हायर सेकेण्डरी में पहुँचो। कॉलेज में पहुँचो और शिक्षित होने का तमगा जेब में रख लो। अब रिहर्सल भी खत्म, वास्तविक नाटक शुरू। बस में चढ़ना हो या टॉकीज में घुसना हो। गेहूँ लाना हो या घासलेट। लगाओ लाइन। करो संघर्ष। जन्मजात संघर्ष हमारा नारा है कर लो इसको पक्का और लगा दो धक्का। हर समस्या का हल है नारा, जनता की अगन है नारा।

इसलिए कलमकार नारे रच कर तुम आम आदमी से प्रतिबद्ध न हुए तो तुम्हारी कोई जात न होगी। नारे रच कर तुम सरकार से भी सम्बद्ध हो सकते हो। खा सकते हो, पी सकते हो। इस द्विधर्मिता के कारण नारा सृजन साहित्य रचना से महान है और तुम भी तो महान बनना चाहते हो। नारे में परिश्रम कम है सफलता ज्यादा। गंगा बहाओ और हाथ धो लो। इसलिए उठो, नारे लिखो।

हम सिर्फ नारा लिखने के लिए ही जन्मे हैं। लड़ने के बीज बचपन में उगे और जवानी में फले-फूले। याद आता है हमने जोश में तेज तर्रार नारा लगाया था। जो हमसे टकरायेगा, मिट्टी में मिल जाएगा। इसलिए देश में मिट्टी ही मिट्टी है। चीन टकराया था तब हम शांति के नारे लगाते रहे थे, वे बंदूकें चलाते रहे थे। फिर पाकिस्तान ने जोर आजमाया। हमने यही नारा जोर से लगाया, दोहराया। पाकिस्तान हारा, इतना बुलंद था हमारा नारा। नारा दुश्मन के लिए है तो दोस्त के लिए भी। हम तो हर किसी के लिए नारा लिख सकते हैं। नारा लिखा हिन्दी-रूसी भाई-भाई। रूस को दोस्त बना लिया। नारे न होते तो दोस्ती का इजहार न होता, राजनैतिक संबंधों का संसार न होता।

नारा पूर्णतः भारतीय संस्कृति का प्रतीक है। अहिंसावादी है। महावीर ने लगाया- 'जीओ और जीने दो' लोग 'म्यूच्युअल' जीने लगे। आज खुद खाते हैं, बॉस को खिलाते हैं, लोगों को कमाने देते हैं। गाँधीजी ने कहा- 'अंग्रेजों भारत छोड़ो'। अंग्रेजों ने ऐसा नारा कभी सुना नहीं होगा। नारा सुन कर वे डर गए और भारत छोड़ भागते बने। गोया, नारा न हुआ एटम बम हो गया। इसलिए कलमकार नारा लिखकर देश का बचा-खुचा नाम तुम भी रोशन कर दो। भावी पीढ़ियाँ तुम पर गर्व करेंगी।

नारा सर्वग्राही है। प्राध्यापक लगाते हैं, लड़के लगाते हैं, मजदूर लगाते हैं, अफसर लगाते हैं। जनता लगाती है, विधायक लगाते हैं। नारे लगाने के लिए अकल की जरूरत नहीं। रटी-रटाई लाइन, रटा-रटाया जवाब। जैसे नेहरूजी अमर रहे, वैसे हरेक नेता भी अमर रहे। नारे लिखने में अक्ल भी नहीं लगती। इसलिए कलमकार दोस्तों, मत चूको। सारे विश्व के लिए नारे लिख डालो। भारतीय इतिहास, ब्रिटेन वाले लिखते रहे हैं। विज्ञान अमेरिकन और रूसी लिख देंगे। अक्ल का काम उन लोगों के लिए छोड़ नारे लिख डालो। मैं ज्योतिषी नहीं हूँ, फिर भी देश का भविष्य जानता हूँ। मशाल जुलूस, सायकल-स्कूटर रैली, विशाल आम सभा आज सभी नारे

की मोहताज हैं।

अमेरिकन बच्चा हवाबाज बनेगा, कुवैती तेल–बाज बनेगा, वैसे ही भारतीय नारेबाज बनेगा। स्कूल, कॉलेज, नारेबाजी का तकनीकी प्रशिक्षण देंगे। पाठ्य–पुस्तकों में नारे होंगे, कुंजियों में नारों की व्याख्या होगी, ग्रंथों में नारों की समालोचना होगी। अतः कलमकार तेल देखो, तेल की धार देखो और नारे लिखो। जिस तरह कवि रहस्यवादी, छायावादी और प्रयोगवादी कहे जाते हैं, तुम नारावादी कहे जाओगे।

सत्ता का समीकरण

वे प्रस्तावित मुख्यमंत्री हैं। हाईकमान ने अभी-अभी संदेश भेजा था दाँव लगा लो, जोड़-तोड़ कर लो और सरकार बना लो। तब से वे गर्भवती स्त्री की तरह हो गए हैं। उन्हें सरकार जनमने की अथाह पीड़ा है। वे नवनिर्वाचित विधायकों की सूची बीसवीं बार पढ़ रहे हैं। वैसे हजारों बार पढ़ेंगे। पवित्र गीता की तरह पढ़ेंगे ताकि सूची कंठस्थ हो जाए और आपात स्थिति में नींद से उठकर वे सूची का पाठ कर सकें। मुख्यमंत्री का काम यही होता है।

वे वृक्ष के तने-से हैं। विशाल हृदय, खुले-खुले। उनकी जड़ें हाईकमान की जमीन में फैली हैं। आस-पास शाखाएँ हैं विभिन्न गुटों की। प्रतिनिधि बैठे हैं। स्पष्ट बहुमत के लिए पौने दो सौ विधायक चाहिए। अभी छोटे-मोटे एक दर्जन गुटों से बात हुई है पर विधायक कम पड़ रहे हैं। बिचौलिये गुट के गुट फोड़ रहे हैं। किसी को कुर्सी पर तो किसी को कुर्सी के हत्थे पर बैठने का ऑफर दे रहे हैं। मंत्रीमण्डल में केबिनेट दर्जे की तेरह कुर्सियाँ हैं। तेरह कुर्सियों के छब्बीस हत्थे हैं। कुल चालीस में एक कुर्सी कम है। सत्ता का समीकरण हल हो जाए तभी वह एक कुर्सी उनकी है।

हाईकमान ने एक फार्मूला दिया है। जो पन्द्रह समर्थक लाए उसे एक कैबिनेट कुर्सी और दो हत्थे यानि एक मंत्री पद और दो राज्यमंत्री पद। हर पाँच विधायकों पर इनाम की गारंटी है। इतने पर भी स्पष्ट एवं टिकाऊ

बहुमत नहीं मिल पा रहा है।

वे सूची से ध्यान हटा भरपूर उबासी लेते हैं। इस बहाने उपस्थित अन्य लोग भी उबासी ले लेते हैं। वे कहते हैं सरकार टिकाऊ होना चाहिए। शेष लोग दोहराते हैं सरकार टिकाऊ होना चाहिए। वे चिंतित, दूसरे फार्मूले की तलाश में हैं। उनका प्रभा मण्डल यानि चमचा–मण्डल भी चिंतित है।

– सर, टिकाऊ सरकार के लिए मंत्रीमण्डल बड़ा होना चाहिए। आज की स्थिति में हर विधायक मंत्री बनना चाहता है।

– जी सर, फिर बड़े मंत्रीमण्डल के लिए हम स्पष्टीकरण दे सकते हैं। बड़ा प्रदेश है। बड़ी समस्याएँ हैं। बड़ा मंत्रीमण्डल जरूरी है। बस मंत्रीमण्डल प्रगतिशील होना चाहिए।

– मंत्रीमण्डल धर्म निरपेक्ष भी होना चाहिए।

– समाजवादी और गाँधीवादी मंत्रीमण्डल के बिना प्रजातंत्र बिना बाप की औलाद है।

इस माहौल में उनका चिंतित दिखना जरूरी है। इसलिए वे चिंतित दिखने लगे है। प्रश्न है, मंत्रीमण्डल का विस्तार कैसे हो?

– सर, नए विभाग बनाए जाएँ।

'आपका विचार तो अच्छा है पर नए विभागों में लोगों के लिए स्कोप होना चाहिए। पार्टी का चंदा, मंत्री की वर्दी और राज्यमंत्री का नाश्ता निकलना चाहिए। ऐसे पद हों तो सुझाइए'।

– इनकम टैक्स और सेल्स टैक्स का अलग मंत्रालय बना दो। समझदार आदमी होगा तो सब उप–चुनाव सम्भाल लेगा।

– सर, एक राहत कार्य मंत्रालय बन सकता है। अभी जगह–जगह सूखा और बारिश में बाढ़ आने वाली है। वैसे भी पिछली सरकारें राहत कार्य सारे साल चलाती रही हैं। पूरे दर्जे के मंत्रालय का इसमें स्कोप है।

– राज्य परिवहन निगम की स्थिति गुड़–गोबर हो गई है। राज्य

परिवहन मंत्रालय बना दीजिए। इस्तीफे आते-जाते रहेंगे। विधायकों को सरकारी गाड़ियाँ जागीर में मिल जाएँगी।

– सर, मेरा एक खास सुझाव है। ट्रांसफर-मिनिस्ट्री अति आवश्यक है। सरकार बनते ही बीस-बाइस हजार लोगों के ट्रांसफर करने पड़ेंगे। सभी मंत्रालय ट्रांसफर करने और ट्रांसफर रद्द करने का ही काम करते हैं। ट्रांसफर मिनिस्ट्री बन जाने से वे ट्रांसफरों के बजाय अपना भी काम कर सकेंगे।

इन सुझावों से वे प्रफुल्लित हो गए हैं। स्पष्ट बहुमत, प्रबल बहुमत में बदल रहा है। इस आधार पर वे मजबूत और टिकाऊ सरकार बना सकते हैं। हाईकमान के लिए सरकार कमाऊ हो सकती है। उनका स्वप्न साकार हो रहा है। साथी लोगों के धंधे-पानी का जुगाड़ हो रहा है। वैसे भी प्रदेश की प्रगति के लिए इन मंत्रालयों का होना जरूरी है। आधार अच्छा है। चार गुट और फोड़ सकते हैं। उन्होंने सूची उठाई। इस बार वे इक्कीसवीं बार सूची पढ़ रहे हैं। ट्रांसफर मिनिस्ट्री उनके खास आदमी को मिलेगी। दलाल, बिचौलिये और सहायक, विधायक विश्राम गृह में दुकानदारों का माल देख रहे हैं। चार और दुकानें अपने मार्केट में जो लगवाना है। उन्होंने ताकीद कर दी है कि सारे संभावनाशील विधायकों से आज रात में ही बात कर ली जाए और जो विधायक तैयार लगें उन्हें विशेष कार में बिठाकर 'पार्टी-गार्ड' के साथ समीपवर्ती राज्य के मुख्यमंत्री के घर भेज दिया जाए ताकि वे समय आने पर राज्यपाल और राष्ट्रपति के सामने परेड कर सकें।

आदमी के बच्चे

सदियों पुरानी बात है तब धरती लोक नहीं था। इंद्र राज्य बढ़ाना चाहते थे, इसलिए उन्होंने एक उच्च स्तरीय बैठक बुलाई। वहाँ दसों दिशाओं से आए चमचे जमा थे। चमचे दैनिक भत्ता लेने और हाँ जी, हाँ जी करने आए थे। इन्द्र धरती को विकसित करना चाहते थे। उन्होंने हजारों देवताओं के तबादले धरती लोक में कर दिए थे पर देवता लावारिस संतान नहीं थे, उन्होंने तिकड़में भिड़ाईं और तबादले रद्द करवा लिए। एक बेचारे मनु ही ऐसे थे, जिनकी कोई एप्रोच नहीं थी। उनके पास दो–चार लाख रुपए भी नहीं थे। सो उनको बोरिए–बिस्तर समेत 'पैराशूट' से नीचे पटक दिया गया था।

बैठक शुरू हुई। गृहमंत्री ने निवेदन किया कि धरती के विकास के लिए देवताओं को सजा न दी जाए। धरती घरेलू साधनों से विकसित हो यानि वहाँ के निवासी वहीं बने। दरबारी प्रसन्न हो गए। उन्होंने प्रसन्नता में डमरू बजाए। विधाता ने सुझाव दिया, सरकार कहे तो दस–बीस लाख आदमी ठेके में बनवा लें। धरती पर जाएँगे तो भी इन्द्र के गुण गाएँगे। यह प्रस्ताव सुन कर वहाँ के सार्वजनिक निर्माण वालों को नानी–दादी याद आ गईं। उन्होंने आदमी की जगह हैरतअंगेज नमूना बनाने की योजना रखी। उन्होंने प्रस्तावित आदमी का ऐसा मॉडल बनाया कि वह ऑटोमेटिक आदमी पैदा कर सके। इस तरह हमेशा आदमी बनाने की झंझट से वे बच गए।

अपनी सत्ता का वर्चस्व रखने हेतु विधाता ने आदमी को मारने के लिए यमदूतों की भरती का सुझाव रख दिया।

सारी बहस में एक जोकरनुमा बड़बोले देवता उपेक्षित हो रहे थे। उन्होंने ढोल पर थाप मार कर सब देवताओं का ध्यान आकर्षित किया और कहा, "भगवन् आदमी एक मुश्त में नहीं बनना चाहिए। वह पहले एक बालिश्त का हो, फिर दो बालिश्त का, फिर तीन का। वह टुकड़ों-टुकड़ों में बड़ा बने। बड़ा मजा आएगा भगवन् इससे देवता और आदमी में कुछ अन्तर भी रहेगा। भगवान उनकी बात मान लेंगे तो वे अपनी दाढ़ी कटा कर बाल देवी के चरणों में अर्पित कर देंगे।"

एक युवातुर्क देवता खड़े हुए। उन्होंने कहा दस साल की उम्र तक आदमी बच्चा रहेगा। फिर किशोर कहा जाएगा। सत्रह साल में युवा हो जाएगा और अठारह साल के बाद वोट देने के काम आएगा। साथ ही कुछ आदमी सदाबहार युवा रहेंगे और कुछ सदा बाहर रखे जाएँगे। वे विपक्ष और पक्ष की तरह बच्चा और आदमी दो समूह चाहते थे। इंद्र ने बीच-बचाव करते हुए कहा, बच्चे आदमी को रात-दिन परेशान रखेंगे। सुख-चैन नहीं लेने देंगे। बड़ी आफत हो जाएगी उसकी। विपक्षियों ने नगाड़े बजाए और कहा, यही चाहिए, यही चाहिए, आदमी आफत का मारा ही होना चाहिए। उसके बच्चे होना चाहिए। रोबीली मूँछों वाले देवता ने कहा बच्चों की मूँछें नहीं होना चाहिए, तो पहलवान छाप देवता ने कहा बच्चे दुबले-पतले होना चाहिए, ताकि वे बड़ों से डर सकें। बड़े लोग उन्हें मार-पीट सकें। दरवाजे की डेरी में दचक सकें। चुनाव आयुक्त ने कहा, बच्चे होंगे तो धरती पर बड़े-बड़े जुलूस निकलेंगे। भाषण के लिए भीड़ जुट जाएगी। चुनाव प्रचार में बच्चे वाहन और भोंगों का काम करेंगे। बच्चे आन्दोलन करने के काम आएँगे। बड़े लोग बच्चों के नाम पर काम करवा लेंगे। बच्चे होंगे तो कानून और व्यवस्था गड़बड़ा जाएगी।

वातावरण में गर्मी आ गई। आय. जी. ने अपनी थीसिस रखी।

उन्होंने कहा मनुष्य शांति से नहीं रह सके, इसलिए हम दानवों की तरह कुछ दुष्ट आदमी बनाएँगे। वे बच्चों को उड़ाएँगे। उनकी खरीद फरोख्त करेंगे। उनको लूला-लंगड़ा, अंधा कर देंगे और उनसे भीख मँगवाएँगे। चोरी करना सिखाएँगे। मैं जानता हूँ अपने डिपार्टमेंट वालों को। दुष्ट आदमियों को पकड़ना उनके बलबूते की बात नहीं है। इसीलिए आदमी हमेशा परेशान रहेगा खुद के बच्चों से। सदन ने तालियों की गड़गड़ाहट से इस प्रस्ताव का भी स्वागत किया।

श्रममंत्री ने घोर आपत्ति की। वे बच्चों के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा आदमी के बच्चे नहीं होना चाहिए। स्वर्ग में छोटे-बड़े सब काम देवताओं को ही करना पड़ते हैं। बच्चे होंगे तो आदमी के छोटे-मोटे काम वे कर लेंगे। मसलन बच्चे कंट्रोल की दुकान पर लाइन लगाएँगे। सब्जी-भाजी और किराना खरीद लाएँगे। दूध ले आएँगे, वक्त-बेवक्त चाय बना देंगे। मेहमानों का मनोरंजन कर देंगे। गरीबों के बच्चे होटलों में कप-बसी धोकर माँ-बाप की मदद करेंगे। बच्चे होंगे तो आदमी राजाओं जैसे ठसके करेगा। सदन की कार्रवाई में श्रममंत्री के विचार भी नोट कर लिए गए।

रसदमंत्री भी खड़े हुए। वे सिर्फ बहस में हिस्सा लेकर अखबार में अपना नाम छपवाना चाहते थे। उन्होंने कहा, अनाज पैदा करने के लिए धरती के लोगों को मेहनत करनी पड़ेगी। हम उन्हें इन्द्र का महत्त्व समय-समय पर समझाते रहेंगे। कभी अतिवृष्टि होगी, कभी सूखा हो जाएगा। आदमी भले ही भगवान के नाम पर बच्चे पैदा करता रहे, उनका पालन-पोषण बराबर नहीं कर पाएगा।

बेचारे शिक्षामंत्री राजनीति के मारे थे। वे सद्भावना मंडल के चेयरमैन भी थे। उन्होंने कहा हम बच्चों को पढ़ाने के बहाने स्कूल खोलेंगे। स्कूलों में मास्टर रहेंगे। वे आलतू-फालतू काम प्राथमिकता के आधार पर

करेंगे। गाँव-गाँव में राजनीति करेंगे। इससे राजनेताओं को फायदा मिलेगा। वे स्कूलों का अनुदान जीम जाएँगे। पार्टी फंड बना कर प्रजातंत्र को जिन्दा रखेंगे। बच्चे नहीं होंगे तो राजनीति नहीं होगी। फिर शिक्षक बच्चों को चंदा माँगना सिखाएँगे ताकि बच्चे बड़े होकर विदेशों में ग्रांट और फॉरेन करंसी में भीख माँग सकें। वैसे छुट्टियों में बड़े बच्चे टाटपट्टियाँ बनाएँगे और छोटे बच्चे गाजर घास उखाड़ने का काम करेंगे। बच्चे देश की दौलत होंगे, इसलिए बच्चों का प्रस्ताव स्वीकृत किया जाना चाहिए। और इन्द्र सभा ने ध्वनि मत से 'आदमी के बच्चे' प्रस्ताव पास कर दिया।

धन्य हैं ये ऋषि-मुनि

हमारे यहाँ शिष्टाचार बताने और मनाने की मीठी परम्परा है फिर भी, मैं शिष्टता से बहुत डरता हूँ। एक डॉक्टर थे, वे शिकारी लगते थे। दिल की धड़कन सुनने के लिए वे स्टेथोस्कोप लगाते थे तो मेरा फ्रंटियर मेल हृदय, अड्डे जैसा स्लो हो जाता था। एक दिन वे अचानक शिष्ट बन गए और शिष्ट रहने का उन्होंने एक पूरा पखवाड़ा मनाया। इसी अवधि में उन्होंने खास आगंतुकों को 'अस्पताल मार्ग' बतानेवाले प्रेरकों को दो-दो सौ रुपए दिलाए। तब से मैं शिष्टाचार से ज्यादा डरने लगा हूँ।

यह सही है कि हम सभी बड़े शिष्टताप्रिय हैं और उसकी हमेशा दूसरों से अपेक्षा करते हैं। शिष्टता का अचार डाल कर शिष्टाचार मनाना हमें अच्छा लगता है। मुझे दु:ख सिर्फ इस बात का है कि सभ्यता, संस्कृति और संस्कारों के प्रतीक शिष्टाचार का हम साल में एक ही सप्ताह या पखवाड़ा मनाते हैं जब कि भ्रष्टाचार पल-पल अभिनन्दन पाता रहता है।

सरकारी ठसकेदार अभिजात्यों की खातिर-तवज्जो में जनता वधू-पक्ष के विनम्र सेवकों की तरह साल भर लगी रहती है। जिस तरह वर के पिता घर लौटते-लौटते शिष्टाचार का प्रदर्शन करने लगते हैं, सरकारी कर्मचारी भी परमानन्द प्राप्त कर विनम्र हो जाते हैं और अपनी विनम्रतामयी छवि की प्रदर्शनी शिष्टाचार-सप्ताह आयोजित कर लगाते हैं।

पिछले दिनों पुलिस वाले शिष्टाचार-सप्ताह मना रहे थे। वे हाथ में

आग्नेय अस्त्र के स्थान पर एक बोर्ड थामे थे। प्रतीक बोर्ड पर लिखा था 'जनसेवा और देशभक्ति'। मैं आँखें फाड़ कर बोर्ड घूरने लगा। एक पुलिस वाला आया। उसने आँखे तरेरी और बोला क्यों बे भाई सा'ब, बोर्ड में कोई हीरोइन जी हैं जो घूर रहा है। मैं उसकी वाक्य रचना ठीक कर रहा था तभी उप निरीक्षक आ गए, कहने लगे "श्रीमान जी, बहस करता है। दो लात पड़ेगी तो रचना जी याद आ जाएगी। वे सिपाही को कहने लगे साहबजादे चले आते हैं साले। मेरे पास भीड़ इकट्ठी होने लगी तो सर्कल इंस्पेक्टर दौड़े आए। उनके पीछे-पीछे डीएसपी भी मौके पर आ गए। सर्कल इन्सपेक्टर, डीएसपी को वाकया बता कर कहने लगे पुलिस से रचना जी की बात करते हैं सर, उसकी आड़ में आवारागर्दी करते हैं सर!

भीड़ और बढ़ गई थी। खीझते हुए डीएसपी यकायक प्रसन्न हो गए। बोले पुलिस आपकी दोस्त है, कोई कठिनाई हो तो आपको पुलिस की मदद लेना चाहिए। कानून और व्यवस्था आप अपने हाथ में क्यों लेते हैं? रचना जी को आप ठीक करने वाले कौन हैं? आप हमें बताइए हम रचना को ठीक कर देंगे। डीएसपी मुझे भले आदमी लगे इसलिए मैंने सारा साहस बटोर कर कहा, 'सर, मैं किसी रचना जी की नहीं, इस सिपाही की वाक्य रचना को ठीक कर रहा था।' वे हँस दिए और उप निरीक्षक को कहा 'इसे थाने में बिठा दो, साला पुलिस को ठीक करता है। अपना शिष्टाचार-सप्ताह चल रहा है, नहीं तो इसको ठीक कर देते।'

शिष्टाचार सप्ताह भोगने का एक अवसर मुझे और मिला। एक बार शहर से गाँव आ रहा था। राज्य परिवहन निगम (रापनि) वाले शिष्टाचार सप्ताह मना रहे थे। बस स्टैंड पर भारी भीड़ थी। एक अधिकारी ने बताया शिष्टाचार-सप्ताह के दौरान सभी खटारा गाड़ियाँ वर्कशॉप में खड़ी रहेंगी। इस कारण बीस गाड़ियाँ बन्द हैं और शेष आठ काम चला रही हैं। मैंने 'आगार-प्रबन्धक' से पूछा ऐसा शिष्टाचार सप्ताह मनाने से क्या फायदा? उन्होंने बताया कि सप्ताह में कंडक्टरगण किराए में बचे पैसे लौटा देंगे, पूरा

पक्का टिकट देंगे, सेव-ममरे बेचने का धंधा कम हो जाएगा, गाड़ियों में दूध नहीं चढ़ेगा, चेकरगण कंडक्टरों से हिस्सा नहीं माँगेंगे आदि-आदि। थोड़ी ही देर में एक गाड़ी अवतरित हुई। उस संस्कारी गाड़ी ने शोक निमग्न हो काला धुँआ छोड़ा और आदमियों को भेड़-बकरियों की तरह भर कर ऐसे चलने लगी जैसे किसी रैली में नई दिल्ली में मंथर-मंथर चल रही हो।

'रापनि' से प्रेरणा लेकर मैंने भी शिष्टाचार दिवस मनाने की सोची। दूसरे दिन ब्रह्म मुहूर्त में उठ गया तो पत्नी घबरा गई। उसने पूछा 'तबियत तो ठीक है न?' मैंने कहा 'कोल्हू के बैल की तरह काम करते-करते तुम थक जाती होगी, सोचा जल्दी उठ कर तुम्हारी मदद कर दूँगा।" वह खिलखिला दी। मैं बर्तन उठा कर पानी भरने नल पर पहुँच गया। वहाँ खड़ी महिलाएँ मुझे ऐसे घूरने लगीं जैसे मैं सश्रम आजन्म कारावासी होऊँ। एक लाइन बच्चों की थी और दूरी लाइन महिलाओं की। मैं तीसरी लाइन बनाकर खड़ा हो गया और 'लेडीज फर्स्ट' का शिष्टाचार निभाता रहा। उस दिन मेरा नम्बर नहीं लगा और उस कारण घटित गृह युद्ध में मुझे घुटने टेकने पड़े।

चूँकि मेरे शिष्टाचार का वह पहला ही दिन था मैंने पहली हार को हार नहीं माना। समय पर बस स्टॉप पहुँचा और क्यू में खड़ा हो गया। बस आने पर रोज की तरह धक्का-मुक्का नहीं की, लाइन नहीं तोड़ी। बस, बस चल दी। मैं वहीं खड़ा रह गया। कोशिश करके जेब में पड़ी चिल्लर को अन्दर ही अन्दर गिना और दफ्तर पहुँचने के लिए ऑटो रिक्शा का जुलाब ले लिया। वह दिन शिष्टाचार दिन था इसीलिए ऑफिस पहुँच कर सीधे बॉस के केबिन में घुसा और उन्हें नमस्ते की। वे चौंके और पूछ बैठे, 'बोलो, क्या काम है? छुट्टी-वुट्टी, लोन-वोन? मुझे चुप देख कर उन्होंने ही कहा कोई बिल अटका है क्या? मैंने विनम्रता से इन्कार किया तो वे डाँट कर कहने लगे फिर क्यों आए? मैं कैसे कहता कि मैं शिष्टाचार दिवस मना रहा हूँ। मैं बाहर भाग आया। क्षण दो क्षण अन्दर रुक जाता तो बॉस मेरा शिष्टाचार निकाल देते।

अच्छी सरकार

सरकार का सिर कैसा हो और उसकी कार कैसी हो इस पर छः विचारकों के सात विचार मिलते हैं। ये अड़ियल टट्टू विचारक अच्छे खासे विचारों को वाद बना देते हैं। इन्हीं लोगों ने साम्यवाद की पतंग काटी है, समाजवाद का भंडा फोड़ा है और गाँधीवाद के लट्ठ बजाए हैं। फिर भी, अच्छी सरकार के बारे में कोई ठोस वाद सामने नहीं आया है। अच्छी सरकार मुझे उस टोपी जैसी लगती है जिसे हर कोई पहन सकता है। इस टोपी को पहनने पर दिमाग गौण और टोपी मुख्य हो जाती है। ऐसे में सरकार का धर्म सरक-सरक कर चलना होता है। इसलिए मैं उस सरकार को अच्छी मानता हूँ जो खुद सरकने तथा 'सर' और 'कार' को सरकाने में माहिर होती है।

सरकार की उक्त परिभाषा से जनता को लगता है कि वे चक छानने के लिए इस देश में पैदा हुए हैं और अपने होने का उद्देश्य पूरा कर रहे हैं। सरकार के अच्छे बनने के लिए जरूरी है कि वह राहत कार्य करवाए और जनता को राहत दिलवाए। आप राहत कार्य से भली भाँति परिचित होंगे। राहत कार्य वे होते हैं जिसमें राहत भी होती है और कार्य भी होता है। इसमें कार्य कम होता है पर दिखता ज्यादा है और राहत ज्यादा मिलती है जो नजर ही नहीं आती। ऐसा राहत-दर्शन ही सरकार को अच्छी सरकार बनाता है।

सरकार के राहत-दर्शन का एक उदाहरण दे रहा हूँ। गाँवों को निकटवर्ती कस्बों से जोड़ने का प्रावधान सभी पंचवर्षीय योजनाओं में हुआ है। पहले योजना काल में सर्वे, दूसरे में स्वीकृति, तीसरे में खुदाई, चौथे में भराई और पाँचवें में मिट्टी दबवाई का योजनाबद्ध काम कई ग्रामों में हुआ है। हर वोट-ऋतु में इनके जीर्णोद्धार का गेती-फावड़ा चलता है। तब मजदूरों की आबादी से ज्यादा लोगों के नाम मस्टर रोल को सुशोभित करते हैं। निर्माण का यह प्रदर्शन ही सरकार को अच्छी सरकार बनाता है। यदि निर्माण कार्य सही रूप से होते तो सारे गाँव सड़कों से जुड़ जाते और वे कस्बों तथा शहरों में घुस आते। निश्चय ही तब सरकार को अपने अस्तित्व पर खतरा महसूस होता। भला हो राहत कार्यों का जिसने सरकार को सरकार बनाये रखा है।

समझदार सरकार शिलान्यास करवा देती है और ढिंढोरचियों से अखबारों में खबरें छपवा लेती है। अच्छी सरकार के लिए ऐसी रामलीला जरूरी है। इस रामलीला को देखते हुए जनता सरकार को जादूगर मानने लगती है और समझने लगती है कि सरकार के डंडा घुमाने और डमरू बजाते ही 'वाटर ऑफ इंडिया' का कथित घड़ा पानी से भर जाएगा। जादूगर सरकार, जनता की चिल्लपों सुन कर उसकी माँगें तुरत-फुरत पूरी करने का उपक्रम करती है। जैसे जनता इंदौर से रेल माँगती है तो सरकार भोपाल से दो बोगियाँ गाड़ी में लगा देती हैं। ऐसे विविध अनुभव हैं हमारे पास कि किसान बिजली माँगता है तो सरकार टेलीविजन का रिले केन्द्र खोल देती है और कस्बे की बत्ती गुल करा देती है। लड़के परीक्षा में नकल करते हुए पकड़े जाते हैं तो सरकार कुलसचिव का बोरिया-बिस्तर बंधा देती है यानि नाक पर बैठी मक्खी को उड़ाना हो तो अच्छी सरकार नाक को उड़ा देती है और घायल आदमी के परिवार को तत्काल आर्थिक सहायता दे देती है।

अच्छी सरकार समझती है कि जनता के दु:ख-दर्द दूर करने के लिए उसे कल्याणकारी होना चाहिए। परिणाम पाने के लिए हाय-तौबा

मचाना अच्छी सरकार का काम नहीं है। उसका उद्देश्य काम चलाना होना चाहिए अर्थात् राहत कार्य कराना होना चाहिए। इसीलिए जनता पानी माँगती है तो सरकार तालाब खुदवाती है। बाँध और नहरें भी कालान्तर में बन जाते हैं। तालाब में पानी भरना सरकार का काम नहीं है वह तो भगवान का काम है। अच्छी सरकार, रामभरोसे चलने वाली सरकार होती है।

मैं जानता हूँ, बिना राहत के मुझे सरकार का अस्तित्व महसूस नहीं होता, सरकार के कल्याणकारी होने का आभास नहीं होता। राहतवादी सरकार को वार्ड नम्बर एक में गड्ढे खुदवा कर वार्ड नम्बर दो के गड्ढे भरवाने चाहिए। राहत कार्य जनता और सरकार दोनों को एक साथ जिन्दा रखते हैं। उपसंहार करते हुए मैं कहना चाहूँगा कि अच्छी सरकार वह है जो जीओ और जीने दो में विश्वास रखती है, जो खुद जीती है और जनता को जिन्दा रखती है राहत कार्य चला कर।

जंगल : सरकारी जंगले में

आला अफसरों के जंगले में हर सरकारी नीति जंगल होती है। फिर, जंगल बीड़ में बदल जाता है। और अफसरान अपने पालतू चमचों के माध्यम से सारी बीड़ चर जाते हैं। इन दिनों देश में जंगल लगाने का कागजी काम जोर-शोर से चल रहा है। सच पूछें तो देश को जंगल बनाने की कोशिश में अफसरान लगे हुए हैं। हमारे अफसर-तंत्र में विलक्षण प्रतिभा है, बुद्धि है और ठसपन है। वे काम करना चाहें तो हनुमान जी की तरह तमाम कानूनों का पर्वत अपनी उंगली पर उठा कर ले जा सकते हैं और वे काम करना न चाहें तो कानून का धनुष कोई टस से मस नहीं कर सकता।

जंगल लगाओ अभियान की शुरुआत करने के पूर्व पिछले दिनों एक विशेष बैठक हुई इस बैठक में चपरासी से लगा कर आयएएस सचिवों ने भाग लिया। बैठक का उद्देश्य था जंगल के बजट पर चर्चा करना। हर अफसर चाहता था जंगल के लिए जितनी अधिक से अधिक रकम खींची जा सके खींच ली जाए। वे जानते थे सरकारी नीति चार दिन की चाँदनी जैसी है, क्या मालूम कब चार दिन पूरे हो जाएँ। इसलिए बैठक में यह तय किया गया कि सभी विभाग जंगल लगाने के लिए एक-एक डीजल जीप लाएँ। स्टेनों और अर्दलियों को तदर्थ नियुक्तियाँ दें और सारा बजट ऊपर ही ऊपर खत्म कर दें।

बैठकियों में कुछ परीवीक्षाधीन अधिकारी मतलब प्रॉबेशनरी

अफसर थे। वे तंत्र में नए-नए आए थे, उन्हें जिज्ञासा हुई। उन्होंने पूछा "इस तरह जंगल का बजट गैर-जंगल खाते में खर्च हो जाएगा। सरकार जब जंगल की प्रगति के बारे में विधानसभा को बताना चाहेगी तब हम जंगल कहाँ बताएँगे?"

एक वरिष्ठ अफसर ने उनकी जिज्ञासा शांत करते हुए कहा "जब सरकार जंगलों के बारे में पूछताछ करेगी तब हम सरकार को सलाह देंगे कि जंगल लगाना वन विभाग का काम है। वन विभाग के पास वनों के विशेषज्ञ हैं। डीएफओ हैं, रेंजर हैं, फारेस्ट गार्ड हैं। ये लोग जंगल नहीं लगाएँगे तो क्या मक्खियाँ मारेंगे? सरकार वन विभाग से पूछेगी, 'कितने जंगल लगे?' इस प्रश्न का उत्तर देने दूसरे अफसर खड़े हुए। उन्होंने कहा "जब सरकार हमसे जंगलों के बारे में पूछेगी, हम आश्चर्य व्यक्त करते हुए लिखेंगे 'जंगल, कैसे जंगल, कौन से जंगल?' हम तो जंगल सहेजते हैं, उनकी रक्षा करते हैं और लोगों को सिर्फ जलाऊ लकड़ी काटने का परमिट देते हैं। जंगल लगाना शायद कृषि विभाग का काम होगा। उनके पास उन्नत बीज हैं, उन्नत कलमें हैं, खाद हैं, कीटनाशक हैं, ग्राम सेवकों की पलटन हैं। इतना होने पर भी यदि वे जंगल नहीं उगाएँगे तो क्या बोइंग-747 उगाएँगे?"

परीवीक्षाधीन अधिकारियों ने कृषि विभाग के आला अफसर की ओर प्रश्नवाचक निगाह से देखा। वे मुस्कुराते हुए आक्रामक हो गए और कहने लगे "जब सरकार हमारा कम्पोस्ट-द्वार खटखटाएगी तब हमारी सेना टिड्डियों को भगाने वाली मुद्रा में चिल्लाएगी। हम सब कहेंगे जंगल सार्वजनिक उपयोग की चीज है। जंगल थोक मात्रा में चाहिए। हम तो एक-दो प्रदर्शन प्लाटों में जंगल लगा सकते हैं। थोक मात्रा में जंगल लगाने का कार्य लोक निर्माण विभाग ने किया होगा। वे बिल्डिंग से लगा कर मलवा तक बना सकते हैं। सड़क के किनारे छायादार वृक्ष लगाने का काम भी उनके जिम्मे है।" उन्होंने लम्बी साँस ली और बैठ गए।

बैठक की अध्यक्षता कर रहे प्रमुख अफसर ने कहा "हमें अपने

अफसरानों के चातुर्य पर पूरा विश्वास है। लोक निर्माण विभाग वाले इस बात को इतने ही तर्क संगत ढंग से स्वास्थ्य विभाग पर टाल सकते हैं। स्वास्थ्य विभाग इसे स्वायत्त संस्थाओं के गले मढ़ सकता है। विभाग दर विभाग जंगल लगाओ अभियान की फाइलें दौड़ सकती हैं और फाइलों का ही एक नया जंगल बन सकता है। नए अफसर घबराएँ नहीं, हमारा सांख्यिकी विभाग हर किस्म के आँकड़े सरकार को दे सकता है। सूचना और प्रकाशन विभाग के ढोलकिए ढोल पीट-पीट कर जंगल लगाओ अभियान के सचित्र समाचार प्रकाशित करा सकते हैं। इसके बाद हम भी खुश, सरकार भी खुश।"

हाल में तालियों की गड़गड़ाहट गूँज उठी। प्रमुख अफसर के तर्कों ने परीवीक्षाधीन अधिकारियों की जिज्ञासा शांत कर दी। तभी उनमें से एक ने पूछा सर जब जनता जंगल में जंगल ढूँढेगी और पूछेगी कहाँ लगे नए पेड़, तब हम क्या करेंगे? करोड़ों रुपयों का हिसाब दे सकना तब कितना मुश्किल होगा?

सारे अनुभवी अफसर बुक्का फाड़ कर हँसने लगे। प्रमुख अधिकारी ने कहा "इस देश में इतनी फुर्सत किसी को नहीं है जो जंगल में जंगल ढूँढे। फिर भी, नए अफसरों की जिज्ञासा है इसलिए उसे शांत किया जाना चाहिए। ऐसी समस्याएँ हमारा चपरासी नन्नूलाल निपटा सकता है।" उन्होंने नन्नूलाल को इशारा किया। वह कहने लगा "सा'ब, हम खबर फैला देंगे कि जंगल में आग लग गई। दो दिन में आग पर काबू पाया गया। सरकारी अमले ने रात-दिन एक कर जंगल की आग सफलता पूर्वक बुझा दी। आग इतनी भीषण थी कि लकड़ी राख-राख हो गई और अरबों रुपयों का नुकसान हो गया।" सब निश्चिंत हो गए कि न उन्हें जंगल लगाना है न आग बुझाना है। उन्हें तो ऐसा काम करना है कि देश की प्रगति दिखे और वे बजट हजम कर डकार भी न लें।

अंधों को आँख वाले अच्छे नहीं लगते

एक दिन रजिस्टर्ड पत्र बाँटने वाला पोस्टमैन आया। छोटा-सा लिफाफा था, भारत शासन सेवार्थ लग रहा था। मैंने लिफाफा लिया और खोला तो सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। कालेधन के सचिव का पत्र था कि महामहिम कालेधन से फलाँ तारीख को दिन के 11 बजे चर्चा के लिए मैं फलाँ फाइव स्टार होटल पर पहुँच जाऊँ। आनन्द के अतिरेक में लिफाफे के बजाय मैंने कॉल-लेटर के चिन्दे कर दिए अन्यथा उसकी फोटो प्रति यहाँ छपा देता। मामले की गंभीरता समझ मैंने पत्नी को इत्तला कर दी कि मेरा अपहरण हो जाए तो खाउओं को निमंत्रण न दें और गप्पेबाज दोस्तों को यह खबर न सुनाएँ। मैं घर के बाहर सोने लगा ताकि कालेधन को मेरा अपहरण करवाना हो तो उन्हें कोई दिक्कत न हो। एक सप्ताह बीत गया पर अपहरण नहीं हुआ। खैर, मैं प्रफुल्लित था क्योंकि कालेधन का पता मुझे मिल चुका था, जिसे पकड़ने के लिए सरकार ने सैकड़ों वेतनखोर लोगों को जमाइयों की तरह पाल रखा था।

चर्चा तिथि समीप आई। मैं होटल के स्वागत-कक्ष में पहुँचा। कालेधन के सचिव मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। स्वागत-कक्ष में राजधानी की तमाम हस्तियाँ थीं। केबिनेट स्तर के मंत्री थे। विभागों के मुख्य सचिव और पुलिस के उच्चाधिकारी थे, उद्योगपति थे और तमाम लोग थे जो बाहर कालेधन को जड़ से मिटाने की कसमें खाते थे। मैं उन सबको जानता था

क्योंकि उनके फोटो अखबारों में लगातार छपते थे। मैं अपनी किस्मत को कोसने लगा कि आज के दिन ही कालेधन के यहाँ पर छापा पड़ना था। पूरा सरकारी लवाजमा जमा था। मैं सचिव की आँखों में संदिग्ध निगाहों से झाँकने लगा तो उसने भैंस-छाप मुस्कुरा दिया और कहा दो-चार मुख्यमंत्रियों को सड़क पर लाने की तैयारी चल रही है।

आखिर अपने ब्रीफकेस उठाए वे वीआईपी गण बाहर आए। मैं मुलाकतियों के प्रसन्न चेहरों को देखकर ताड़ गया और उन्हें घूरता रहा। उनकी आँखों में कहीं भी शर्म नहीं थी, घबराहट नहीं थी, भय नहीं था। उल्टे, उनका पौरुष देख कर मुझे शर्म आ रही थी। सचिव ने मुझे संकेत किया 'चलो'। लाल कालीन पर चलते हुए मुझे लगा जैसे मैं कोई विदेशी पत्रकार होऊँ, सरकारी निमंत्रण पर आया हुआ।

भरे-पूरे हाल में कालेधन का सचिवालय था। हर विभाग में काम करवाने के लिए उसके विशेषज्ञ बैठे थे। उनकी चमचमाती टेबलों पर बेशुमार हीरे-जवाहिरात थे, सोना था, नकद रुपया था, जो बेल्ट द्वारा इधर से उधर हो रहा था। ऐसा दृश्य था जैसे रिजर्व बैंक हो। सचिव ने बताया अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का भ्रष्टाचार यहाँ होता है। यहाँ लेन-देन के फार्मूले तय होते हैं। राष्ट्र में भ्रष्टाचार बढ़ाने के लिए राज्यों की राजधानियों में प्रधान कार्यालय हैं और कार्यालय तो चप्पे-चप्पे में है। वे मुझे कालेधन के केबिन में ले गए। मैंने कालेधन को देखा तो देखता ही रह गया। वैवाहिक विज्ञापनों के वर जैसा सुन्दर, कामदेव को लज्जित करने वाला काया कल्प, बोले तो शब्द कोमल गांधार में निकलें।

कक्ष में नियंत्रण के लिए टेलीविजन कैमरे लगे थे। टेलीफोन, रिकॉर्डर से जुड़े थे। इलेक्ट्रानिकी-व्यवस्था का जाल बिछा था। मैं कालेधन की सत्ता के समक्ष अभिवादन कर गया। उन्मुक्त हो उसके खुले साहस की प्रशंसा की और खाकी वर्दी के बाजारूपने का रोना रोया। इच्छा हुई खादीधारी खरबूजों की मदद लेकर कालेधन को पकड़वा दूँ। मैंने कहा मैं

आप पर लिखना चाहता हूँ। वह मुस्कुरा दिया और बोला "क्या लिखोगे तुम?" यह न कि मैं समानान्तर अर्थ व्यवस्था चलाता हूँ। महंगाई बढ़वाता हूँ और गरीबों का खून चूसता हूँ। मैंने गंगा–यमुना के पवित्र देश में भ्रष्टाचार फैलाया है।" वह हँसा और जोर से हँसा। बोला 'लोगों को पैसा देखकर जीभ लपलपाने को मैंने नहीं कहा। उनके चरित्र को बाजारू मैंने नहीं बनवाया कि पैसों की खातिर वह बिक जाएँ। बाजार में तो हर चीज के खरीददार होते हैं दोस्त!'

मैंने कहा, "आप जो कहते हैं वह भी सच है। पर आपके कारण भ्रष्टाचार इतना व्यापक हो गया है कि वह आम भारतीय का चरित्र लगता है। जो भ्रष्टाचारी हैं वे सुखी हैं, सम्पन्न हैं और बेचारे ईमानदार...?" उसने ठहाका मारा और गुस्से में कहा, "गाली मत बको। सिरफिरों और मूर्खों की औलाद हैं ईमानदार। उल्लू मर गए और ईमानदार छोड़ गए। तुममें ईमानदारी बाकी हो तो उन पर लिखो खबर, जिन्हें तुमने मोल–भाव करते हुए देखा है। खोलो सत्तारूढ़ मंत्रियों की हाथी–पोलें, उद्योगपतियों की लूटपाट और बड़े अधिकारियों की गचागच जीमो नीति। इन बेईमानों को क्या तुम नहीं जानते? क्या सरकार नहीं जानती, क्या जनता नहीं जानती? कभी सोचा है क्यों चलती हैं फाइव स्टार होटलें, कहाँ से रेंगती हैं चींटियों की तरह इस देश में कारें? कैसे बना लेते हैं लोग अपने रजवाड़े? कहाँ से आती है इनके पास अथाह दौलत? यह सब खबर है जो तुम्हें नहीं दिखती। तुम भी उठाओ ब्रीफकेस और अंधे बन जाओ। मेरे जूते बन जाओ। हम अंधों को आँख वाले अच्छे नहीं लगते। इसलिए हम उनकी आँखें फोड़ देते हैं, उनके जमीर से अपने जूते बना लेते हैं।" मैं उठा और यह खबर पहुँचाने के लिए भागने लगा, उसके बंद कमरे में।

दफ्तर का सप्ताह : पाँच दिन

केन्द्रीय सरकार घोषणाओं का कारखाना है। जब मर्जी हो, जैसी मर्जी हो सरकार भैंस की तरह पोठा कर देती है। ऐसे ही पिछले दिनों केन्द्र सरकार ने घोषणा की कि उसके दफ्तरों में सप्ताह पाँच दिन का होगा। यूँ सप्ताह सात दिन होता है। सरकार, सरकार है। जो इच्छा हो सो करे पर सप्ताह को छोटा-बड़ा करने का काम सरकार को नहीं करना चाहिए था। यह काम हमारे ज्योतिषाचार्यों का है। वे किसी साल अधिक मास कर देते हैं, किसी पखवाड़े में तिथि घटा देते हैं, किसी में बढ़ा देते हैं।

मैं भी आपकी तरह जिज्ञासु नागरिक हूँ। इसलिए केन्द्रीय सरकार के एक आला कर्मचारी को पूछा 'सर, सप्ताह पाँच दिन का हो गया क्या?' उन्होंने पीछा छुड़ाने के लिहाज से कहा, 'हाँ, निकट भविष्य में सरकारी दफ्तरों में हफ्ते में पाँच दिन काम होगा। दो दिन छुट्टी रहेगी।'

दफ्तर में हर हफ्ते पाँच दिन काम होने की बात से मुझे सांत्वना मिली। सहानुभूति व्यक्त करते हुए मैंने कहा बड़ा नुकसान हो गया आप लोगों का। पहले सारे हफ्ते काम ही नहीं करना पड़ता था, मौज-मस्ती थी। च्च, च्च! अब हर हफ्ते पाँच दिन....'

मेरे वचनों ने उन्हें द्रवित कर दिया। सरकारी कर्मचारी काम जैसा हीन कार्य करें, इस विचार से ही उनका चेहरा तमतमा उठा और वे ज्वालामुखी के लावे की तरह बहने लगे। कहने लगे- 'अजी काम तो वैसे

ही होगा जैसे होता आया है। काम दफ्तर में तो होता नहीं, घर पर होता है। दफ्तर तो मेल मुलाकात के लिए हैं बस इसलिए खुले रहेंगे।'

मेरी स्थिति सरकार जैसी हो गई। उनका बोलना मुझे ऐसा लगा जैसे लाखों कर्मचारी चिल्ला रहे हों। सरकार हाय, हाय। नहीं चलेगी नहीं चलेगी, तानाशाही नहीं चलेगी। मैं नागरिक, गंगू तेली हो गया। वे कर्मचारी, राजा भोज बन गए। कहने लगे, अब दफ्तर दस बजे से छह बजे तक लगा करेंगे। चपरासियों को जल्दी आना पड़ेगा। नए बाबू लोगों को कुछ फाइलें ज्यादा खोलनी पड़ेंगी। हमें क्या फर्क पड़ेगा, बीस साल से नौकरी कर रहे हैं झक तो मार नहीं रहे हैं।

वे और बोलते, किन्तु मैंने बीच में बोलना शुरू कर दिया। बोल-बाधा के कारण वे क्षणिक रुके और पुनः कहने लगे- दफ्तर ग्यारह बजे खुलता है तो हम साढ़े ग्यारह बजे तक पहुँच जाते हैं। सिर्फ आधा घंटा लेट पहुँचो तो कोई क्या कहेगा? सच बताएँ तुम्हें महँगाई-भत्ते की किस्त की कसम, थोड़ी देर हलो-हलो करने और पहली चाय-पानी में बारह बज जाते हैं। साहब के चेम्बर में जरूरी कागजात लेकर घुसे तो कभी आधा-एक घंटा वहाँ निकल जाता है। फाइलें और कागज तो सब्जी-भाजी की तरह आते हैं। दफ्तर कोई कुंजड़े की दुकान तो है नहीं कि सब फाइलें फैला कर बैठ जाएँ। काम, काम-काज के ढंग से होता है। काम करने के लिए मूड चाहिए और जब तक काम करने का मूड बनता है तब तक सेवा भावी लोग आ जाते हैं। डेढ़ बजे तक उनके साथ कैंटीन चले जाते हैं। दो बजे यूँ ही लंच होता है। लंच के आधे घंटे पहले चले जाओ तो क्या फर्क पड़ता है?

वे प्रश्न चिन्ह बन गए। मुझे लगा यदि जान-बूझकर मैंने इनके इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया तो वे बेताल की तरह कैंटीन में घुस जाएँगे। मैंने पुनः मौन तोड़ा और कहा- हाँ, सिर्फ आधे घंटे से क्या फर्क पड़ता है। आधे घंटे सवेरे लेट पहुँचे तो आधा घंटे पहले लंच पर चले जाओ। लंच से आधा घंटे लेट आए तो आधा घंटा पहले घर चले जाओ। प्लस-माइनस,

माइनस-प्लस। सब बराबर। क्या फर्क पड़ता है?

वे बेहद खुश हुए। मुझे डर लगने लगा कहीं उन्होंने मुँह खोला तो उनकी वैज्ञानिक ढंग से बनी बत्तीसी थपाक से बाहर निकल कर वायुमंडल में प्रवेश न कर ले। तभी उन्होंने कहा : "जीनियस, यू आर रियली जीनियस"।

मुझे अपनी काबिलियत पर पहली बार गर्व हुआ। वे दिन राजा-महाराजाओं के होते तो मुझे अशर्फियों से भरा थैला बख्श दिया जाता या एक विधानसभा क्षेत्र की विधायकी मिल जाती। पर वे कर्मचारी थे, वह भी तृतीय श्रेणी कर्मचारी। उन्होंने कहा 'आओ, हम चाय पीएँ। वैसे हमें लोग खिलाते-पिलाते हैं, पर हम तुम पर प्रसन्न हैं। आज हम तुम्हें चाय पिलाएँगे।'

किसी कर्मचारी से चाय पी सकने का अवसर दुर्लभ है। मैं अपनी किस्मत पर इठलाता उनके पीछे-पीछे होटल में घुस गया। वे होटल की ढाई टाँग कुर्सी पर मेरे समीप बैठ गए। मुझे लगा वे अमेरिका के राष्ट्रपति हैं और मैं रूस का। वे चाय क्या पिला रहे हैं, मुझे लगा मेरे सम्मान में भोज दे रहे हैं। हमारी द्विपक्षीय वार्ता सौहार्द्रपूर्ण वातावरण में संतोषपूर्वक चलती रही। नीति वक्तव्य जारी करते हुए उन्होंने कहा 'सच पूछो तो सप्ताह के बदले पूरा महीना पाँच दिन का होना चाहिए। एक दिन तनख्वाह का, एक दिन घेराव का, एक दिन हड़ताल का, एक दिन स्टाफ-पार्टी का और एक दिन... एक दिन...'

'काम का।' मैंने चाय खत्म करते हुए कहा। वे नाराज हो गए। उन्होंने कहा, 'बिल, तुम अदा कर दो।' मैं उन्हें जाते देखता रहा और सोचता रहा मैं क्या गलत कह गया।

लाभ-शुभ के चौघड़िए में

ओ कन्या की माताजी, प्रभात बेला में बालिका दहाड़े मार रही है और तुम अभी तक बासिदा साफ कर रही हो? जरा और जल्दी उठ जाया करो तुम।

तुम्हें मालूम है न विश्वविद्यालय वालों ने मेरे पौरुष को चुनौती दे रखी है। इतने वर्षों के सेवाकाल में बनाए रिश्ते अब सार्थक हो रहे हैं। परीक्षा की कॉपियों के बंडल घर में भरे पड़े हैं। द्रुतगति से बिल्टियाँ और पार्सलें आ रही हैं। मेरी लाल पेंसिल हॉलीडे एक्सप्रेस-सी दौड़ रही है, ज्यादा से ज्यादा कॉपियाँ निबटा रही हैं। और यह कन्या, हायराम! मेरा तप भंग करने पर तुली है। इसे सम्हालो मेरी प्राण प्रिये ताकि रेवड़ी का अधिक से अधिक हिस्सा हमारे खाते में जमा हो सके।

ब्रह्मा की कसम, ब्रह्म मुहूर्त से मेरी उनींदी आँखों की गिद्ध दृष्टि इन कॉपियों पर टिकी है। मैं न सो रहा हूँ न जाग रहा हूँ, बस साधना कर रहा हूँ। चिंतन कर रहा हूँ। देश में तीन मिनट में सैकड़ों बच्चे जन्म ले लेते हैं और इतने समय में मैं सिर्फ एक कॉपी जाँच पाता हूँ। वह तो अच्छा है कि मैं अनुभवी हूँ, न मेमोरेंडम पढ़ता हूँ न हिदायतें ही समझने की जरूरत है मुझे। बस हस्तलेखन देखता हूँ, पन्ने गिनता हूँ और पूरक पुस्तिका के वजन का अन्दाज लगा कर नंबर देता चला जाता हूँ। प्रभु कृपा है मुझ पर, जहाँ गड़बड़ी होती है वहीं दृष्टि थम जाती है। अन्यथा दूसरे परीक्षक दिन में बीस

कॉपी जाँच पाते हैं और तीस रुपये की दाड़की में सीजन का एक दिन बर्बाद कर देते हैं। बैंड वालों को देखो, इस सीजन में उनका साधारण कलाकार सौ रुपए रोज घड़ रहा है, क्या हम पीएच. डी. वालों की जमात इससे भी गई बीती है? हमारी उत्पादकता बोर्ड वालों ने वैसे ही घटा रखी है। वे वस्तु–निष्ठ प्रश्न पूछते हैं जिसमें विद्यार्थी को सही वस्तु लिखनी पड़ती है और परीक्षकों को निष्ठा से जाँचना पड़ता है। ऊपर से इस कन्या ने आसमान उठा रखा है मेरी उत्पादकता कम करने के लिए। लानत है तुम जैसी बीवी पर जो ऐसे प्रतिक्रियावादी तत्वों को प्रोत्साहित करती है।

भगवान! कम्पीटिशन का जमाना है यह। लोग मुफ्त में पाँचवी बोर्ड की कॉपियाँ जाँच रहे हैं। आठ आने में आठवीं बोर्ड और डेढ़ रुपए में विशाल बोर्ड की कॉपियों की जँचाई चल रही है। उनके वहाँ दिन पाली में थोक में 'सेंट्रल वेल्युएशन' चल रहा है और रात पाली में हम बाहरी विश्वविद्यालयों के बंडल निपटा रहे हैं। सवेरे से कुल्ला तक नहीं किया है मैंने। हालांकि बीड़ी और उसके रासायनिक दबाव से निबट आया हूँ, फिर भी, कड़क–मीठी चाय पीने की इच्छा को दबा कर मैं विद्यार्थियों का भाग्य लिख रहा हूँ। उनकी प्राप्तियों का टोटल मिला रहा हूँ। सबको किनारे से लगा उन्हें आत्महत्या करने से बचा रहा हूँ। कितनों को जीवनदान दे रहा हूँ। ऐसे में कन्या का मासूम विलाप मेरे देवत्व को मटियामेट कर देता है। 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' का आदर्श विचार तब लौकिक बंधनों में बंध जाता है, देवी।

जानती हो तुम हमारे प्राचार्य, श्रद्धेय बा एक गोला प्रसाद गटका कर आते हैं। कभी तरंग में अंडे ही अंडे टिकाते हैं तो कभी पूरे के पूरे अंक न्यौछावर कर देते हैं, इस पार या उस पार शैली में। इसीलिए उनका रिजल्ट हमेशा औसत रहा है। उन्होंने यांत्रिक ढंग से कॉपियाँ जाँची हैं। यश और अर्थ दोनों अंटी किए हैं उन्होंने। उन्हें श्रेष्ठ परीक्षक का पदक मिला है और मुख्य परीक्षक की पदोन्नति भी। मेरी चिर जीवन संगिनी कॉपी दौड़ में कड़ा

मुकाबला है, इस बार मुझे जीतना है यह दौड़। इसलिए मुझे निश्चिंत, ध्येयमयी और उद्देश्यपूर्ण बनने दो। इससे ही हमारे परिवार के कल्याण के योग हैं।

इस वर्ष प्रश्न पत्र धड़ल्ले से आउट हुए हैं, साथ ही, संवाद एजेंसियाँ भी सजग हो गई हैं। परीक्षा भवनों से थैले भर-भर कर प्रश्न बैंक की सामग्री जब्त हुई है और पुलिस के मारे नकल अस्त्र का ससमय उपयोग करने से विद्यार्थीगण वंचित रह गए हैं। कुछ बदनाम विश्वविद्यालयों ने कोड नंबर पद्धति अपना ली है और वे इस लम्बी-चौड़ी प्रक्रिया को गोपनीय बनाए रखने में लगे हैं। इस कारण हमारी रिस्क बढ़ गई है और भाव बढ़ गए हैं। तमाम सरकारी विभागों ने मूल्य सूचकांक के साथ पहले ही अपने भावों में बढ़ोत्तरी कर ली थी। अब हमारी भी दरें संशोधित हो गई हैं। बस काम करवाने वाले चाहिए। जेब में दम हो तो भला इस देश में कोई काम रुकता है? देखो, बाहर देखो गुरु पत्नी, किसी की आहट सुनाई दे रही है। कोई मुमुक्षु परिचित की चिट्ठी लेकर हमारे द्वार आ रहा है। उसे दिशा बताओ। डाक-दूत आ रहा हो तो उससे संदेश ग्रहण करो। उन्हें विस्तारो। इंका का टेलीफोन नंबर अर्थशास्त्र के विद्यार्थी का रोल नंबर है। 'हिस' हिन्दी साहित्य है और 'राय' राजनीति शास्त्र है, संवाद एजेंसियाँ नहीं। कार के आई. पी. सी नंबर, भोपाल के मकान नंबर और राज्य लाटरी के ड्रा की तारीख में जीवन तत्व छुपा है, उसे साधो। कन्या का इस लाभ-शुभ के चौघड़िए में रोना अशुभ है।

इस कॉपी महायज्ञ में योगदान के लिए मैंने अपने प्रिय और कबाड़ी शिष्यों को न्योता है। वे नहा-धोकर तथा खा-पीकर मुझ विप्र के घर आएँगे। अंकों का पुनर्योग करने, विश्वविद्यालयों और बोर्डों के पत्रक भरने, बंडल बाँधने और इन बंडलों को डाक अथवा रेल विभाग में धकेल देने का पुनीत कार्य वे रुचिपूर्वक कर देंगे। कुछ आत्मीय जनों की कॉपियों के मुख्यपृष्ठ के अतिरिक्त सभी पृष्ठ बदलने और योग्यता सूची के दाँव-पेंच जमाना उन्हीं

के बलबूते की बात है। कुछ अंक बढ़ाने में न अपना बिगड़ता है न देश का बिगड़ता है। यदि विद्यार्थी खटकर्मी होगा तो हर कहीं नौकरी पा लेगा और प्रशासन में धन लगाने का कार्य तेज कर देगा। अंक बढ़ाने की इस प्रक्रिया में मैं तो निमित्त मात्र हूँ, इसलिए निमित्त ग्रहण करूँगा और इस कन्या के उज्जवल भविष्य के लिए आधार बनूँगा। अतः हे हृदयेश्वरी, तुम इस कन्या को उठा पुचकारो और समझाओ कि "तुम्हारे तात नई पीढ़ी के निर्माण में अहम् भूमिका निभा रहे हैं। बेटी मत रोओ और निश्चिंत हो जाओ, जब तुम बड़ी हो जाओगी तो प्रावीण्य सूची में तुम्हारा नाम सबसे ऊपर ही रहेगा।"

दीवारें, समाज का चेहरा

क्या मालूम किस भलेमानस ने दीवारों के कान देख लिए और अफवाह फैला दी कि दुनिया वालों सम्हल कर रहना इन बेजान दीवारों के कान होते हैं। पर मैंने दीवारों को हमेशा दूसरे रूप में पाया है। वह रूप है प्रचारक का। जो भी है, जैसा भी है, जहाँ भी है, उसका तटस्थ भाव से प्रचार करती हैं दीवारें। दीवारों के इस गुण के कारण आदमी मकान एक, और दीवारें चार बनाता है।

प्रचारक के रूप में दीवारों को काम करते आपने जरूर देखा होगा। दीवारें कहीं पहलवान छाप बीड़ी का प्रचार करेंगी तो कहीं भ्रष्टाचार के विरोध में अपील करती मिलेंगी। किसी चौराहे के नुक्कड़ पर दीवारें साबुन का प्रचार करती मिलेंगी तो सार्वजनिक मूत्रालयों की दीवारें खबर खोजी विज्ञापनों का खजाना बन जाएँगी। उदीयमान चित्रकारों की रेखा-कृतियों का पहले-पहल प्रदर्शन भी यहीं देखने को मिलेगा।

साहित्यकारों की पढ़ने-लिखने वाली और छायावादी पीढ़ी ने साहित्य को समाज का दर्पण कहा है, पर यथार्थ के धरातल पर सोचा जाए तो समाज का दर्पण दीवारें हैं। दीवारें, जो ऋतुओं और मौसम के नखरे और काल के थपेड़े सहन करती हैं और समाज को वह सब बताती हैं, जो उन पर लिखा जाता है, वे ही समाज की सच्ची प्रवक्ता हैं। फर्ज कीजिए, समाज को सतयुग की जरूरत है और दूर-दूर तक उसके आसार नहीं हैं, ऐसे में

धर्म के हितचिंतक दीवारों को अपना माध्यम बनाते हैं। तब दीवारें अपने प्रचार–तंत्र का जादू चलाती हैं और कहती हैं 'कारों का काफिला आएगा, उसमें स्वनाम धन्य महात्मा आएँगे और सतयुग लाएँगे।' मनुष्य के आम स्वास्थ्य के बारे में सरकार के अलावा जो लोग चिंतित हैं, वे बन्दर छाप दंत मंजन से दाँत चमकाने की सलाह दीवारों पर उकेर जाएँगे। क्रान्ति के अग्रदूत इन संदेशों के आस–पास 'रोटी–कपड़ा दे न सके, वह सरकार निकम्मी है' का सामाजिक उद्‌घोष करवाने लगेंगे। ये सब तथ्यपरक बातें, जो दीवारें खुलेआम कहती हैं, वह पुरस्कारधर्मी साहित्यकार की लीपापोती से ज्यादा महत्त्वपूर्ण हैं।

दीवारें साहित्य की नहीं, आर्थिक स्थिति की भी प्रवक्ता होती हैं। झोपड़ियों की चरमराती, ढहती, घास–फूस लकड़ी की दीवारें तथा सीमेंट–कंक्रीट की दीवारें और शहरी युवती–सी स्नोसेम और ऑइल पेंट से पुती दीवारें समाज की आर्थिक विडम्बना की जीती जागती मिसाल हैं। भारत जैसे देश में जहाँ लघु उद्योगों का जाल सरकारी चूहे कुतुरते रहते हैं, ये दीवारें ही हैं जो उनके कागजी–उत्पादन के नाम से जनता को परिचित कराती हैं। दीवारों के इस स्वरूप के कारण विज्ञापन लिखने के लिए दीवारें कम पड़ रही हैं। लोग एक विज्ञापन के ऊपर चूना पोत कर दुबारा लिख रहे हैं और रंग की परत दर परत उखाड़ कर दीवारें विज्ञापन की भाषा को नित नए आयाम दे रही हैं। यदि आपकी दीवारों को ताकते–झाँकते चलने की आदत हो तो आपने कपड़ा प्रदर्शनी और नगर निगम चुनाव की संयुक्त अपील को अवश्य इस तरह पढ़ा होगा। 'भव्य सेल, डिस्काउंट सीजन में आपका अमूल्य वोट दीजिए।' स्कूटर, मोटर–साइकिलों की मरम्मत करने वाले मैकेनिक के विज्ञापन पर लीपापोती के कारण जो संदेश बना है, वह समझते हुए भी मैं समझा नहीं पा रहा हूँ। लिखा है, "प्रधानमंत्री जी के हाथ मजबूत करने के लिए हम गारण्टीड मरम्मत करते हैं।"

ऐसे विज्ञापनों को पढ़कर मुझे लगता है कि एक दीवार विज्ञापन से

दूसरे की रासायनिक क्रिया होती है। और यह नया, भिन्न यौगिक विज्ञापन बनता है। रोजमर्रा की आपाधापी में आपको ऐसे कई विज्ञापन देखने को मिल जाएँगे जैसे आसान किश्तों में प्रजातंत्र की रक्षा करना हमारा कर्तव्य है या पचास रुपये में तीन पासपोर्ट साइज पैण्ट सिलवाने का एकमात्र स्थान। जहाँ दीवारें खरीददारी के विज्ञापन से आदमी की क्रय शक्ति भड़काने का प्रयत्न करती हैं वहीं वे चुनाव पोस्टरों की भरमार बता कर आवश्यक स्रोतों के प्रति इंगित करती हैं। ऐसे पोस्टरों ने कई दीवारों का नंगापन छुपा दिया है। बावजूद इसके मैं दिल्ली की दीवारों से बेहद प्रभावित हूँ। भगवान बनाई जन्म-जन्म की जोड़ी को मिलाने का दुष्कर कार्य करने वाले विवाह ब्यूरो के पते पूरी दिल्ली और राजधानी के मार्गों पर लिखे मिल जाएँगे। जीवनसंगियों के मिलने में दीवारों का यह योगदान बेचारे युगल को जिन्दगी भर याद आता रहेगा।

दीवारों ने अपने प्रचारक स्वरूप के कारण विक्रेताओं को लुभा लिया है। गेरू, खड़िया और चूने से लिखे जाने वाले विज्ञापन आजकल ऑइल पेंट से लिखे जाने लगे हैं। क्या गाँव क्या शहर, बाहरी दीवारों के चप्पे-चप्पे को विज्ञापनबाजों ने नारी की तरह विज्ञापन का माध्यम बना दिया है। लोग बड़े अरमान संजोकर अपने घर और दुकान पर फबता हुआ रंग कराते हैं और किसी रात दलबदलुओं की तरह दीवारें अपना रंग बदल देती हैं। पिछले दिनों की बात है विज्ञापनबाज दीवारों के कारण भोपाल के अधिकारी इतने उत्तेजित हो गए कि सरकारी गाड़ियों में काला रंग भरकर सब विज्ञापनों को काला कर डाला। कला प्रेमियों को इन सेंसर की गयी दीवारों को देखकर लगता है, भोपाल की गली-गली कला वीथिका बन गयी हैं और सारा भोपाल भारत भवन। देश भर में दीवारों की यही स्थिति है। हमारे चरित्र को अच्छी तरह समझ कर विज्ञापनकर्ता चूना, रंग और ब्रश लेकर गली-गली में घूम रहे हैं। दिखे जगह लिखे वहीं!

सफरनामा एक डॉक्टर का

मेरा जन्म बचपन में हुआ था, तब मैं बहुत छोटा था, इसलिए मुझे नहीं मालूम मैं क्या बनना चाहता था, पर सभी माँ–बाप अपने बेटे को योग्य बनाना चाहते हैं इसलिए तत्कालीन फैशन के अनुसार मम्मी मुझे डॉक्टर बनाना चाहती थीं और पापा इंजीनियर। भाई भी मुझे कुछ बनाना चाहते थे। उन्होंने मुझे क्रिकेट स्टार घोषित कर दिया था। वे हमेशा बैटिंग करते रहे और मैं फिल्डिंग करता रहा, ग्राउंड साफ करता रहा। गेंद पकड़ता रहा और क्रिकेट स्टार कहलाता रहा। क्रिकेट टीम के लिए बल्लेबाज चाहिए, गेंदबाज चाहिए, मैं तो ग्राउंडबाज था, स्टार था। टेस्ट मैचों के अलावा मेरी खपत नहीं थी। इसलिए मैंने कोई शो मैच नहीं खेला। लौट के बुद्धू घर पर आया था, मैं भी आ गया। वो दिन है और आज का दिन, भारत की क्रिकेट टीम को मेरा अभाव सतत खला है, खलता रहेगा, खैर।

मम्मी शासन के आदेश से मुझे मेडिकल में जाना पड़ा। डॉक्टरी का कोर्स पाँच साला है। पढ़ने में भी मैंने विशेष रुचि दिखाई। मैंने वह कोर्स आठ साल में पूरा किया। मेरी कड़ी मेहनत, मम्मी–पापा की दूरदृष्टि एवं विश्वविद्यालय के पक्के इरादे ने मुझे डॉक्टर बनवा दिया। पुछल्ला 'टर' जाति बोधक है, खाने कमाने वालों की जाति का। जैसे कलेक्टर, एक्टर, इंस्पेक्टर वैसे ही डॉक्टर। मेरे 'टर' बन जाने से मम्मी खुश हुई। भाई प्रसन्न हुए और पापा चिन्तामुक्त। सब को लगा, एक बोझ टला।

मैंने भी अपना बोझ सरकार पर टालने की हर सम्भव कोशिश की। मेरी विशिष्ट शैक्षणिक योग्यता के कारण सरकार ने दस बार इंटरव्यू के लिए न्योता दिया। ग्यारहवीं बार बुलावा नहीं आया तो मैं पूर्ण निठल्ला बन गया। जन सेवा करने की ठानी। मान न मान, मैं डॉक्टर महान। निजी क्लिनिक खोला। कुछ अकल थी सो लगाई, शहर कोतवाल से उसका उद्घाटन करवाया ताकि किसी मरीज का अधिक उपचार हो जाए तो जेल की हवा खाने से बचूँ। पत्रकार से अध्यक्षता करवाई जिससे अखबार में मेरा यश छपे, अपयश छुपे। सरकारी अस्पताल के बड़े डॉक्टर ने समापन किया। मेरे मरीजों का अंतिम उपचार करने वाले वे ही तो थे। आप जानते ही होंगे, राजनेता जिस चीज को छूता है, वह गायब हो जाती है। विधायकजी, जो समारोह के मुख्य अतिथि थे, ने मेरा सिर छुआ। रही-सही अकल ने अन्तरात्मा की आवाज सुनी और वह दल की तरह दिमाग बदल गई। मैंने सबका हार्दिक, जिसे हृदय से कहते हैं वह वाला आभार माना।

समारोह के पूर्व एवं पश्चात की सफलता के लिए मोहल्ले में निमंत्रण पत्र मैंने स्वयं ही वितरित किए थे। हर पारिवारिक मुखिया से मिला था। बड़े-बूढ़ों के थोक में पैर छुए थे। मैं पहली बार विनम्रता व आदर भावना से ग्रसित हुआ था, नववधू जैसा लज्जित हुआ था। इस कारण मोहल्ले में चर्चे हो गए। उद्घाटन में सहज की काफी लोग आए थे। कमजोर लोगों को डिसेन्ट्री होने का पूरा इन्तजाम किया था। विशिष्ट चाय थी, एसिडिटी बढ़ाने वाली। गला पकड़ने के लिए विशेष रंग थे। नया दवाखाना चलाने के ये नए ढंग थे। चार-छः स्थानीय कवि, कविता पाठ कर रहे थे। अनजाने सिर दर्द के कीटाणु भर रहे थे। लोगों ने कार्यक्रम खूब सराहा। इस तरह दुकान शुरू हो गई।

मरीजों पर ख़ुदा मेहरबान रहा होगा। कोई मरीज नहीं आया। मैं बड़ी प्रातः आँखें मलते-मलते उठता, अस्पताल जाता, मक्खियाँ मारता, देर रात तक उबासी खाते हुए, ऊँघते हुए बैठा रहता। क्या मालूम कौन कब

बीमार हो जाए। पाँच रूपए फीस लेता गुजारे लायक। अपना सारा ज्ञान, सारी शक्ति मरीज को चंगा करने में लगा देता। वे न भी चाहते तो जबर्दस्ती लगा देता। बमुश्किल चार–छः लोग ही मेरे पास आते थे। दो–चार दिन में ठीक हो जाते थे। मैं खाली बैठ मरीजों को ताकता था। सुबह–शाम चने फाँकता था। धंधा मंदा था। लोग मुझसे आँखें नहीं मिलाते थे, कन्नी काट जाते थे। मेरे दवाखाने में ऐसे शर्माते थे जैसे मैं गुप्त रोग विशेषज्ञ होऊँ। मैं अनुभवी डॉक्टरों के पास पहुँचा। वे वास्तव में अनुभवी थे। शरीर विज्ञान या भेषज विज्ञान की किसी भी पुस्तक में ये अनुभव नहीं लिखे गए थे, नितांत सीक्रेट। मेरी समस्या सुनकर वे हँसे तो मैं रुआँसा हो गया। उन्होंने कहा बच्चू सुन। मैंने बिल्कुल बच्चू बन कर सुना।

डॉक्टरों के फार्मूला नम्बर फोर्टीफोर की रनिंग कॉमेंट्री आप भी सुनिए। मैं तेज कदमों से दवाइयों की दुकानों पर गया। दवाइयों के खाली डिब्बे, अपारदर्शक शीशियाँ एवं बोतलें इकट्ठी की। किसी में एक–दो गोली डाली, किसी में कैप्सूल डाले, कई खाली रखीं। डिस्टिल्ड वाटर की दो सौ शीशियाँ उधारी में खरीद लीं। उन्हें बड़े–बड़े पैकिंग में पैक करवाया, कुलियों पर लदवाया और शान से पैदल आया। छोटे–छोटे कदमों से आया, ताकि सब लोग इत्मीनान से देख सकें। माताएँ घूँघट की ओट से देखती रहीं। बहुएँ दरवाजे से झाँकीं। भाभियों और बहनों ने खिड़कियों से अपनी एक झलक डिब्बों पर डाल दी। मोहल्ले में हल्ला हो गया। नया डॉक्टर बहुत दवाइयाँ लाया है।

तद्न्तर, इसी क्रम का दूसरा सूत्र अपनाया। मैंने अपने पड़ोसियों और उन्होंने उनके पड़ोसियों से आग्रह किया कि वे अपने खाली समय में मेरे क्लिनिक पर आ जाएँ। एक घंटा बैठें तो चाय, दस मिनट बैठें तो बीड़ी या सौंफ–सुपारी। इस कारण भीड़ हमेशा रहने लगी। कभी–कभी अस्पताल कथा–स्थल हो जाता। फीस पाँच रूपए से दस रूपए कर दी। क्योंकि मरीज पाँच रूपए देता तो पास–पड़ोसी को बताने में शर्माता था कि उसने पाँच

रुपल्ली के डॉक्टर से इलाज करवाया है। लोग बेचारे का मजाक उड़ा देते। गरीबों की भी इज्जत होती ही है। वे अब मुझे डिस्काउंट रेट में दस रूपए देते हुए गर्व अनुभव करते एवं वक्त-बेवक्त मेरा प्रचार कर अपना रौब गाँठते। मैंने मरीज देखने की तकनीक भी बदल दी। कोई भी मरीज आता। पन्द्रह-बीस मिनट बाहर बिठाता, फिर बुलाता। केस सीरियस बताता, डिस्टिल्ड वाटर का इंजेक्शन लगाता। पन्द्रह दिन की दवाइयाँ लिख देता। इतनी दवाइयाँ कि प्रातः में उसे नाश्ता लगे। दोपहर में दवाइयों से पेट भर जाए। उसके खाने की आदत बदल जाए, कालांतर में अनाज ही उसके लिए दवाई हो जाए। एक दवाई दी, उसका असर मिटाने को दूसरी दवाई लिखी। मरीज को तीसरे दिन फिर बुलाया। देखा न देखा, भगा दिया और फिर बुलाया। समय की पाबन्दी सिर्फ रेलों के लिए है। इसलिए मैं सवेरे लेट आता। जल्दी भाग जाता। कहता सीरियस पेशेंट देखना है। या झूठ तेरा आसरा। आम भारतीय प्रदर्शन प्रिय होता है। वह चंगा है तो भारतीय है, वह मरीज है तो भी भारतीय है, इसलिए प्रदर्शन करेगा। अपनी बीमारी की प्रदर्शनी लगाएगा और कहेगा वह बीमार है। बीमारी का नाम बताते हुए उसका सीना गर्व से तन जाएगा। कहेगा उसे डायबिटीज है, ब्लडप्रेशर है, ब्रेन ट्यूमर है। भारत में बीमारी को आदमी की सम्पन्नता का प्रतीक समझा जाता है। मैं मरीजों को उनकी सम्पन्नता समझाने की कोशिश करने लगा और ऊपर से दवाइयों के टोटके करने लगा।

परिणाम देखिए। मेरी पौ-बारह हो गई। मरीजों की कतार लगने लगी। मरीजों का आगमन प्राइवेट डॉक्टर के लिए लॉटरी खुलने जैसा है। मैं अनवरत सफल डॉक्टर बनने लगा। पानी का इंजेक्शन लगाता। मरीज आधा ठीक। आहें बन्द, फिर दवाई की लम्बी सूची। बिल देखे तो पसीना आ जाए, और पसीना आया तो दर्द, बुखार आदि भाग जाएँ। ऊपर से श्रेय मुझे। डॉक्टर दस रुपए लेता है एकदम रिजनेबल। इंजेक्शन तो अपने पास से लगा देता है। डॉक्टर क्या है भगवान है भगवान। केमिस्टों की आय भी तेजी से बढ़ने

लगी। उधर भी स्वागत। उधारी में दवाइयाँ, फ्री गिफ्ट, नाश्ते-पानी में लिफ्ट। सबकी जबान पर मेरा ही नाम था। नया-नया लड़का है उसके हाथ में जादू है। इन्टेलीजेंट है। मेडिकल रिप्रेजेन्टेटिवों में चर्चे होने लगे। वे कहते अपने लिए एक देवता का अवतार पैदा हुआ है। वे भी मेरे दर्शन को आने लगे। सैम्पल की दवाइयाँ, कभी डायरी, कभी पेन, मेरे कर-कमलों में अर्पित कर जाते। वे भेंटें कभी शहर कोतवाल को जातीं तो कभी विधायक को। कभी लायक को, कभी नालायक को।

यूँ तो देश में कई रोग हैं छोटे-बड़े, इलाज किया और ठीक भी किया। भारत में विशेष किस्म का रोग भी है, छुट्टी रोग। इसकी कोई दवाई नहीं है। डॉक्टर की फर्जी चिट्ठी ही उसका इलाज है। जितने दिन मरीज को ऑफिस से तड़ी मारना हो उतने दिन के विश्राम की सलाह चाहिए, लिख दो। नकली बिल बना दो। मेरी साफगोई के लिए क्षमा करना, भारत में डॉक्टरों का मुख्य काम यही है, हर तरह का डॉक्टर इसमें विशेषज्ञ होता है। ऑफिसजीवी बाबू साल में दस बार बीमार होते हैं। मेहनतकश मजदूर बहुत कम बीमार होता है। मैं भेंट वस्तुएँ विभिन्न कार्यालय प्रमुखों की धर्मपत्नियों एवं अतिरिक्त पत्नियों को समर्पित कर छुट्टी रोग विशेषज्ञ बन गया हूँ। न दवाई के रिएक्शन की चिन्ता, न मरीज की हालत की। लैटरपैड उठाया, आँख मूँद कर बीमारी लिख दी। बस फिर है तगड़ी फीस, कम टीस। जान पहचान और मान सम्मान में वृद्धि, मरीज ओब्लाइज रहे सो अलग।

अस्तु, ख़ुदा का फजल है, अल्लाह की मेहरबानी। सीनियर डॉक्टर मेरे सामने भरते हैं पानी। मरीज चंगा हो न हो, मैं चंगा हो रहा हूँ। ईश्वर की कृपा है भगवान का वरदान है, मेरे हाथों में पानी का इंजेक्शन भी रामबाण है। अब मैं सफल डॉक्टर हूँ, पूर्ण डॉक्टर हूँ। मरीजों की भीड़ है। दूसरे डॉक्टरों को केस रिफर करता हूँ, वे भी मुझे रिफर करते हैं। वे कमाते हैं, मैं भी कमाता हूँ। ऋद्धि है, सिद्धि है। बस मरीज, मरीज है, मरीज रहेगा यही उसकी नियति है। डॉक्टर डॉक्टर है, डॉक्टर रहेगा, वह ऐसा भाग्य लिखवा कर लाया है।

डाका डालने की क्या जरूरत

अखबार के मुखपृष्ठ पर असम, पंजाब, बलात्कार और बैंकों में डकैती के समाचार रोज छपते हैं। मैं सम्पादक होता तो चार नए स्तम्भ शुरू कर देता। मेरी तात्कालिक चिंता बैंक डकैतियों को लेकर है। डकैत लाखों रुपए इस तरह उठा ले जाते हैं जैसे सरकार अनुदान बाँट रही हो।

मैंने बैंक में कुछ रुपए जमा कराए हैं, छः साल में दुगुने होने वाले हैं। इसलिए मैं समय-समय पर बैंक वालों के हाल-चाल पूछता रहता हूँ। एक दिन मैं अपने बैंक के प्रबंधक के पास पहुँचा। वह यूनियन नेताओं से घिरा था और प्रबंधक की बजाय बंधक अधिक लग रहा था। मैंने उससे कुशलक्षेम पूछी तो वह 'राग-बैंक' अलापने लगा। मुझे लगा उसका किसी ग्रामीण शाखा में तबादला हो गया होगा। तसल्ली के लिए मैंने पूछा 'क्या कैकयीरूपी चमचों के कहने पर दशरथरूपी प्रादेशिक प्रबंधक ने तुम्हें राम बना दिया है ग्रामीण शाखा में वनवास पर जाने के लिए? वह दाँत फाड़ कर हँसने लगा। उसने कहा 'बैंकों में डकैतियाँ बढ़ रही हैं।' मुझे गुस्सा आया उस पर। बैंकें लुट रही हैं और वह दाँत फाड़ कर हँस रहा है। बैंक में सरेआम नकाबपोश घुस आते हैं और स्टाफ को स्ट्रॉन्ग रूम में ऐसे ठूँस देते हैं जैसे वो सस्ते अनाज के थैले हों।

प्रबंधक ने कहा 'कुछ डिपॉजिट दो, हमें डिपॉजिट बढ़ाना है। मैंने पूछा 'किसके लिए बढ़ाना है, डिपॉजिट बढ़ाओगे तो डकैत आ जाएँगे। बैंकों

के कारण दिन दहाड़े डकैती की वारदातें बढ़ गई हैं। उसने कहा "हमारे यहाँ सुरक्षा के कड़े प्रबंध हैं, एक गार्ड रात-दिन पहरा देता है।" मुझे हँसी आ गई। इतनी बड़ी पुलिस फोर्स के होते डकैतियाँ हो रही हैं तो एक अकेला गार्ड क्या कर लेगा?

डकैती का सिस्टम कितना सरल कर दिया है बैंकों ने। पहले नकाबजन पूरी तैयारी के साथ रात में आते थे। वे ड्रेन होल के सहारे गटर के मुख्य पाइप में घुसते थे। फिर पाइप से बैंक में सेंध लगाते थे। तिजोरी खोलने में शुद्ध घी का दम लगता था। तब कहीं इक्का-दुक्का लोग बैंक डकैती में सफल हो पाते थे। अब डकैत आते ही मैनेजर और कैशियर की चाबियों का अपहरण कर लेते हैं और उपस्थित लोगों की एक लाइन में थप्पी जमा देते हैं। वे नोटों को कार में भर कर ऐसे जाते हैं जैसे राजा-महाराजा जा रहे हों। बैंक डकैती बिना पूँजी का उद्योग बन गया है। बैंक लूटने वाले देशी तमंचे और खाली पिस्तौल लेकर आते हैं और रस्सी बम के सहारे बैंक लूट ले जाते हैं। बैंके ऐसे ही लुटती रही तो रिजर्व बैंक को कितने सारे नोट छापने पड़ेंगे।

आए दिनों बैंको में डकैतियाँ बढ़ रही हैं। बैंक वालों से मैं इस बात पर चर्चा करने लगा तो एक प्रबंधक कहने लगे 'सर, डाका डालने की जरूरत क्या है? जरूरतमंद बैंक में आएँ, कागजातों पर दस्तखत करें और पैसा ले जाएँ। बैंक से पैसे ले जाने का यह सरल-सा कायदा है, लोग इतना भी नहीं कर सकते?' वे कहने लगे 'हम कितनी मदद करते हैं, लोगों को लड़की की शादी और दहेज के लिए लोन चाहिए तो हम उन्हें खुदरा व्यापार की योजना के अन्तर्गत कर्जा दे देते हैं। लोग अपना अदद घर बसाना चाहते हैं तो हमारे पास लघु उद्योगों को कार्यशील पूँजी देने की योजना है। लोगों को शराब पीने और सट्टा खेलने के लिए रुपया चाहिए तो कमजोर वर्गों को कम ब्याज पर ऋण देने के हम थोक में जलसे करते हैं। लोगों की मनचाही मुराद के लिए हम कागजी योजनाएँ बनाते हैं। सच, बैंकों की हालत गाँव में

छाछ निकालने वाले पटेल जैसी हो गई है। जिससे हर कोई कहता है लाओ छाछ दे दो। खट्टी हो तो खट्टी दे दो। फिर भी लोग बैंक में डकैती डालते हैं, स्टाफ को परेशानी में डालते हैं, बुरी बात है न यह! जो लोग डकैती डालते हैं उन्हें कौन समझाए कि महात्मा गाँधी के देश में खून-खराबा अच्छा नहीं लगता।'
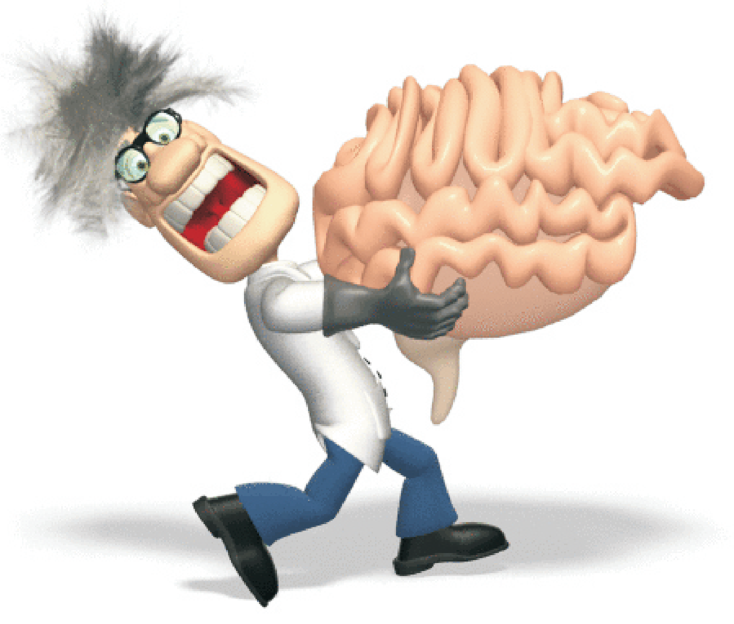
■■